शान्ति-पथ

(मौलिक कहानियों का नवीन संग्रह)

रघुवीरशरण अग्रवाल एम० ए०

प्रकाशक

नव भारती प्रकाशन, मेरठ

प्रथमबार १९५२ ।।।=)

प्रकाशक
नव भारती प्रकाशन,
मेरठ

१६५२

मुद्रक
इनसाइट प्रेस,
दिल्ली

आमुख

प्रत्येक देश का कथा-कहानी-साहित्य, सदैव से ही मौखिक एवं लिखित रूप में, मनोरंजन तथा शिक्षा का विषय रहा है। ऐसा साहित्य, जन-रुचि के अनुसार उन्नत एवं अवनत होता रहता है। आबाल-वृद्ध, राजा-रंक, नर-नारी, सभी मानव-मात्र, कथा-कहानी-साहित्य की, किसी न किसी रूप में आवश्यकता तथा उपयोगिता का अनुभव प्रत्येक काल में करते रहे हैं। भारत में ऐसे साहित्य की सदैव से उन्नति होती रही है और वर्तमान तो और भी अधिक अभिवृद्धि का युग है। अस्तु, भारत में कथा-कहानी-साहित्य का भविष्य, अत्यन्त उज्ज्वल एवं आशापूर्ण है।

मौलिक कहानियों का यह संग्रह 'शान्ति-पथ' नाम से पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। इन कहानियों में आदर्श एवं यथार्थ दोनों ही तत्त्वों का रुचिकर समन्वय है तथा शान्त, हास्य, वात्सल्य आदि विभिन्न रसों का सुमधुर परिपाक है। विद्यार्थियों के रुचि-वैचित्र्य एवं चरित्र-निर्माण का ध्यान रखते हुए, विद्यानुरागी व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण भी किया गया है। सामाजिक कहानियों में समाज में प्रचलित अनावश्यक रीति-रिवाजों तथा कुरीतियों की आलोचना भी की गई है।

स्वतन्त्र भारत के राष्ट्र-भाषा-प्रेमी अपने साहित्य की उन्नति एवं अभिवृद्धि से ऐसे ही सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होंगे जैसे अन्य देशवासी अपने-अपने देश के साहित्य-विकास से हर्ष एवं सुखानुभव करते हैं। आशा है मौलिक कहानियों का यह प्रथम संग्रह विद्यार्थियों और इतर जनवर्ग को रुचिकर, मनोरंजक तथा उपयोगी सिद्ध होगा।

अन्त में सुयोग्य पाठकों से समुचित प्रोत्साहन की प्रार्थना करता हुआ मौलिक तथा प्रेस-सम्बन्धी भूलों तथा त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना करना अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानता हूँ। यदि पाठकों ने इस संग्रह को अपनाया तो दूसरा संग्रह भी शीघ्र ही, उनकी सेवा में प्रस्तुत किया जायगा।

सोमवार, ७ जनवरी, १९५२ }
मोदीनगर (मेरठ) }

विनीत—
रघुवीरशरण अग्रवाल

विषय-सूची

: १ :

हरी साड़ी

१

अप्रैल का महीना था। गुलाबी मौसम हो रहा था। न तो ठंड ही अधिक थी और न गर्मी। कहने का अभिप्राय यह, कि मौसम अत्यन्त सुहावना और चित्त को प्रसन्न करने वाला था।

मैं कालिज से पढ़कर आने के पश्चात्, होटल के कमरे में कपड़े बदल रहा था। अकस्मात जीने पर किसी के जूतों की आहट हुई। मैंने चौंककर ज्योंही जीने की ओर दृष्टि डाली, तो देखा, कि मेरे सहपाठी रोशनलाल के पिता-मास्टर जी खड़े हैं।

उन्हें वहाँ देखते ही, मैं चकित रह गया। मन में सोचने लगा—'आज मास्टर जी मेरे पास यहाँ क्यों आये हैं? वह कभी पहले, यहाँ नहीं आये थे। विचारों में मग्न, मैं जल्दी से उठा, नमस्ते की, और बड़े सम्मान के साथ उन्हें अपने कमरे में ले गया, और बैठने के लिए आराम कुरसी बिछा दी।

मैं एक विचित्र उलझन में पड़ गया। मन में विचार आता—क्या मास्टर जी के यहाँ तक कष्ट करने की बात पूछ लूँ, या नहीं? परन्तु मेरी हिम्मत न होती। इतने में ही मास्टर जी ने

प्रश्न किया—"क्या तुम्हारी इंटर की परीक्षा समाप्त हो गई ? घर कब जा रहे हो ? मुझे तुम्हारे पिता जी से कुछ काम है"।

यद्यपि ये प्रश्न 'कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा' सदृश मालूम हो रहे थे, परन्तु फिर भी मैंने कहा—'जी हाँ! परीक्षा तो समाप्त हो गई है, परन्तु घर जाने के सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चय नहीं है। 'अच्छा तो तुम कल सुबह घर आना, तुमसे भी एक आवश्यक कार्य है।' इतना कह कर मास्टर जी तो अपने घर चले गए, किन्तु मेरी व्याकुलता और उलझन और अधिक बढ़ गई।

मैं बार-बार सोचता था—क्या मास्टर जी कोई ट्यूशन दिलाना चाहते हैं ? अथवा बाजार का कुछ काम है ? या अपने सुपुत्र को पढ़ाई में सहायता देने की बात कहनी है। इसके साथ ही यह भी विचार आता कि मास्टर जी ने मेरे पिता जी से मिलने की बात किस लिए कही ?

बड़ी कठिनाई से उस रात को सो सका। स्वप्न पर स्वप्न रात भर आते रहे। एक विचित्र स्वप्न, जो मैंने उस रात्रि में देखा इस प्रकार था—"वही मास्टर जी मुझे अपने साथ अपने किसी सम्बन्धी के घर ले गए हैं। मैं वहाँ उनकी बैठक में बैठा हुआ हूँ। कोई 'हरी साड़ी' पहने वहाँ आई और हमारे सामने कुछ मिठाई, नमकीन और दो गिलास पानी रखकर चली गई"

अकस्मात मैं चौंक कर जाग पड़ा। बिस्तरे पर पड़ा हुआ बहुत देर तक सोचता रहा—'यह कैसा स्वप्न। ऐसा अच्छा स्वप्न तो मैंने आज तक नहीं देखा !'

इतने में ही रोशनलाल द्वारा होटल का दरवाजा खटखटाने की ध्वनि मेरे कानों में पड़ी। घड़ी की ओर दृष्टि

डाली तो देखा कि पाँच बजे हैं। प्रेम ! प्रेम !! 'अरे भाई ! कब तक सोते रहोगे ? मालूम होता है, आज सैर की छुट्टी है।'

मैंने दिल में कहा—'बस आज शगुन बिगड़ गया। क्या ही अच्छा स्वप्न देखा था ! आशा थी, कोई विशेष खुशी प्राप्त होगी ; किन्तु इस दुष्ट ने, अपनी डेढ़ आँख दिखा कर, मेरी आशा-वाटिका को चौपट कर दिया। आज दुष्ट न ही आता। इसे रोज़ सैर की ही लगी रहती है'।

आखिर बिस्तरे से उठ कर अनमने मन से, दरवाज़ा खोला सूरत देखते ही मैंने कुछ गम्भीर होकर कहा—'रोशन ! दुनिया में अनुपस्थिति की शिकायत होती है; उसका जुर्माना होता है लेकिन मेरा जी चाहता है, कि आज तुम पर यहाँ उपस्थित होने का जुर्माना करूँ'। कुछ देर चुप-चाप, सुनकर रोशन दबी आवाज़ में बोला—'ऐसा क्यों ? क्या मेरा यहाँ आना तुम्हें बुरा लगता है ?' हम दोनों एक दूसरे को समझते हुए भी ना समझ बन रहे थे। मन के भाव छिपाते हुए मैंने कहा— कुछ नहीं, क्या तुम बुरा मान गए ? मैंने तो हँसी की थी। चलो अच्छा-घूमने चलें !' फिर तो हमने जूते पहन लिए और घूमने निकल पड़े।

नगर के बाहर निकले ही थे, कि राम कहानी आरम्भ हो गई। मैंने अपना स्वप्न सुनाया, क्योंकि 'मित्र से कोई बात छिपाई नहीं जासकती। रोशन हँसने लगा। मैं कुछ लज्जित-सा हुआ और दूसरी बात चला दी ; लेकिन उस 'रंजीतसिंह' से पीछा छुड़ाना बहुत ही कठिन काम था। अनेक प्रकार का हास-परिहास चलता रहा। जब भी वह अपनी डेढ़ आँख मेरी ओर घुमाता, मैं भी अपनी आधी आँख बन्द करके मुस्कराता

हुआ कहता—'क्या बात है ?' वह मेरा परिहास समझकर, तुरन्त चुप हो जाता; क्योंकि कभी-कभी दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार ही काम देता है।

आज सैर करने में कोई विशेष आनन्द नहीं आया। एक तो रोशन लाल से नोंक झोंक होती रही, दूसरे मास्टर जी के यहाँ जाने की जल्दी थी।

ठीक सात बजे, मैं सैर से लौटा और नहा धोकर आठ बजे मास्टर जी के मकान पर पहुँच गया। मैं इंडियन होते हुए भी, 'इंडियन टाइम' के विरुद्ध हूँ। समय की पाबन्दी को अपने जीवन में सफलता की प्रथम सीढ़ी मानता आया हूँ।

मैंने मास्टर जी के घर पहुँचते ही नमस्ते की और उन्होंने मुझे देखते ही बड़े प्यार से बुलाकर अपने पास बिठाया। मैं सोच रहा था आज अवश्य ही कोई विशेष बात है। मैंने देखा कि मास्टर जी के पास, न जाने कौन, दूसरे सज्जन बैठे थे, जिन से मास्टर जी भाई कहकर बातें करते थे।

मैं नीची गरदन किए हुए जमीन की ओर देख रहा था और वे दोनों परस्पर धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। यद्यपि मेरे कान भी वहीं लगे थे, लेकिन उनकी रामकहानी के कान-पूँछ मेरे हाथ न आ सके। हाँ, एक बात तो मैंने अवश्य सुनी—"लड़का तो अच्छा है। इसके पिता जी भी राजी हैं। अब इसी के सहमत होने की बात है"।

कुछ अटकल से और कुछ गत रात्रि के स्वप्न की सहायता से मैं उनकी बातों का कुछ-कुछ मतलब समझ तो गया परन्तु पूरी तरह नहीं। कुछ देर बाद वह दूसरे सज्जन वहाँ से चले गए।

२

मास्टर जी ने कहा—'मैंने तुम को एक विशेष कार्य के लिए बुलाया है। क्या रोशन ने तुमको बतला दिया है?' 'रोशन ने तो मुझे कुछ भी नहीं बतलाया,' मैंने उत्तर दिया—'जो सेवा मेरे योग्य हो, मैं उपस्थित हूँ'। मास्टर जी बोले—'वह जो महाशय मेरे पास बैठे थे, मेरे भाई होते हैं। मैं चाहता हूँ, तुम मेरी बात पर विचार करोगे'। मैंने फिर तो साहस करके पूछा—'मास्टर जी। क्या बात है?' उन्होंने कहा—'देखो! उनके एक लड़की है, जिसका सम्बन्ध वह तुम से करना चाहते हैं। तुम्हारे पिता जी भी सहमत हैं। तुम्हारी क्या राय है?' मैं तुरन्त क्या कहता? लज्जा से सिर झुका लिया और कुछ न बोला।

मास्टरनी जी पूछने लगीं—'बेटा! चुप कैसे होगए?' मैंने उत्तर दिया—'माता जी! मैंने कभी गुरु की आज्ञा नहीं टाली है; लेकिन अभी तो......।' अभी तो क्या! कहते हुए मास्टर जी ने मेरी तरफ कड़ी निगाह से देखा और रोशन लाल ने भी अपनी डेढ़ आँख से। मैं डर सा गया, केवल यही सोचकर कि कहीं मास्टर साहब अप्रसन्न तो नहीं होगए।

जब मेरे चुप रहने से काम नहीं बना तो मैंने कुछ कहना चाहा लेकिन इतने में ही मास्टर साहब बोल पड़े—'क्या विचार है'? मैं फिर भी चुप रहा। फिर मास्टरनी जी ने मास्टर जी से कहा—"बिना लड़की को देखे, आप भी सोचो, लड़का कैसे हाँ कर दे"। फिर तो मास्टर जी भी, मेरी चुप का आशय समझ गए और उधर जाने का विचार होगया।

जब मैंने देखा कि रोशन लाल भी चलने के लिए कपड़े पहन रहा है, तो मुझसे न रहा गया और कहना ही पड़ा—'मास्टर

जी ! रोशन को यहाँ ही छोड़ चलें तो अच्छा हो, क्योंकि तीन, साथ-साथ अच्छे न रहेंगे ।

मास्टरनी जी बोलीं—'लड़का ठीक तो कहता है । 'अच्छा तो रोशन ! तुम यहीं रहो । घर के लिए तुम्हें बाजार से शाक सब्जी भी तो लानी है । मुझे न जाने कितना समय लगे ?' मास्टर जी ने कहा ।

जाने की तैयारी हो ही रही थी कि मास्टरनी जी नाश्ता ले आईं और कहने लगीं—"देखो बेटा ! ऐसे समय बिना कुछ जलपान किये नहीं जाना चाहिए । मीठा मुँह करके जाना शुभ होता है" । मैंने पूछा—'मुझे कहाँ जाना है ?' वह मुस्कराती हुई बोलीं—'प्रेम तुम बड़े भोले हो । क्या तुम अभी तक नहीं समझे, कि कहाँ जाना है ?' मैं चुप रहा । फिर उन्होंने बतला ही दिया—'दुलहिन को देखने । समझे या नहीं ।' मैंने सिर हिलाकर 'अच्छा '!!! कहा ।

३

अब हम दोनों वहीं जा पहुँचे, जहाँ हम पहले स्वप्न में हो आये थे । लगभग दस बजे का समय होगा । हमें बैठक में बिठा दिया गया । पाँच मिनट बाद ही मेरे स्वप्न की परी, वही 'हरी साड़ी' वाली छमछम करती आई और कुछ मिठाई, नमकीन हमारे सामने रखकर चली गई ।

मैंने एक दृष्टि में ही बहुत कुछ देख लिया । मन में अत्यन्त प्रसन्न हुआ और ईश्वर को धन्यवाद दिया । मुझे विचारमग्न देखकर मास्टर जी बोले—'क्या सोच में पड़ गए ? जलपान करो ।' मैं शर्माकर मिठाई खाने लगा । जिह्वा मिठाई का स्वाद ले रही थी ; दिल में मीठी-मीठी गुदगुदी हो रही थी और मेरी आँखों में हरी साड़ी का चित्र बनता जा रहा था ।

ज्योंही कुछ मिठाई-नमकीन खाया होगा कि मास्टर जी 'सेकेंड शो' की घंटी बजाते हुए बोले — 'अरी 'प्रभा'! जरा दो गिलास पानी और दे जाना।' वह हरी-साड़ी फिर आँखों के सामने आ गई और इस बार, मैंने अपना चित्र पूरा कर लिया। मैंने पानी पीकर ठंडी साँस ली और कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से हृदय में भगवान् को धन्यवाद देते हुए, मास्टर जी की ओर देखा। जलपान समाप्त होते ही ठाकुर साहब ने पान का बीड़ा मेरी ओर बढ़ा दिया और उसके साथ पाँच अशर्फियाँ भी। मेरी ओर देखते हुए मास्टर जी बोले—'कहो बेटा! काम ठीक है न।' मुझसे 'हाँ जी' ही कहते बना, और कुछ न कह सका।

वह मेरा पहला अनुभव था—जब मैंने देखा कि स्त्री कितनी आकर्षक और मायामयी होती है! प्रेम का प्रथम बन्धन, कितना मधुर मालूम होता है। अपरिचित व्यक्ति भी अपने-से मालूम होने लगते हैं। एक विचित्र आकर्षण और मोह उत्पन्न हो जाता है।

अब हमें वहाँ से वापिस आना था। लेकिन वहाँ से उठने की इच्छा ही नहीं होती थी। इतने में ही मास्टर जी कहने लगे-- "अब चलें।" ज्योंही 'अब चलें' की ध्वनि कानों में पड़ी, ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कोई स्वर्ग से नरक में धकेल रहा हो।

फिर वहाँ से वापिस आ गए। मैंने होटल का रास्ता लिया और मास्टर जी ने अपने घर का। दो मास के पश्चात् मुझे पिता जी का पत्र मिला कि गाँव आ जाओ, तुम्हारी पहली जुलाई की शादी है। मुझे छोटे भाई के पत्र से पहले ही सब कुछ मालूम हो गया था।

आठ दिन पहले सगाई और फिर धूमधाम से विवाह।

विवाह के सम्पूर्ण संस्कार आर्य विधि से अत्यन्त साधारण रूप में हुए। यह विवाह एक संस्कार मात्र था, रुपये की होली नहीं थी। न कुछ लेने देने की शर्तें थीं। बनियों का सौदा नहीं, अपितु दो आत्माओं का प्रेम बन्धन था। न कोई दलाल और न कोई हस्तक्षेप करने वाला नाई ब्राह्मण। विवाह इसीलिए हुआ कि विवाह होना चाहिए था। इसलिए नहीं, कि विवाह करना पड़ा हो।

४

तभी से मुझे हरे रंग से बड़ा प्रेम है। वास्तव में सच्ची प्रीति है। हरे रंग ने मुझे हरियाला बन्ना बनाया। मेरे सिर पर नौशा होने का मुकुट रक्खा।

मैं संसार की प्रत्येक वस्तु में उसी हरे रंग को देखता हूँ। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मुझे उसी हरी साड़ी की मूर्ति मालूम होती है। मैं कभी कभी सोचता हूँ—'क्या हर सावन और बसन्त में प्रकृति, मेरी हरी साड़ी वाली से उसकी हरी साड़ी नहीं माँग लाती है?'

क्योंकि प्रकृति को माँगी हुई वस्तु पर इतना गर्व है। तभी तो प्रकृति गर्मी से झुलसती है; वर्षा में भीगती है; जाड़े से काँपती है और पतझड़ में निर्लज्ज, नंगी हो जाती है।

परन्तु मेरी हरी साड़ी वाली प्रकृति जैसी नहीं। उसमें सच्चाई है। वह क्षण २ रंग नहीं बदलती, वह बहुत कुछ स्थायी है। उसका हरा रंग आज भी मेरे हृदय को हरा करता है। उसी हरे रंग से मेरे जीवन की लता आज तक हरी है, क्योंकि वह न जाने कब से हरी साड़ी धारण करती रही है।

उसका रंग हरा मेरे नयनों को प्रकाश, हृदय को सान्त्वना और आत्मा को सच्ची शान्ति देता है।

परमात्मा-पुरुष और उसकी माया-प्रकृति को हरा रंग बहुत ही प्यारा है और हम दोनों को भी। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि मैं तो परम पिता परमात्मा का अंश—जीवात्मा हूँ और मेरी हरी साड़ी वाली-प्रभा, महामाया प्रकृति का रूप है।

बस इसीलिए मैंने हरे रंग को अपना जीवन साथी बना लिया है। मैं प्रत्येक वस्तु में हरे रंग को चाहता हूँ। हरे रंग की शाक सब्जी अधिक खाता हूँ। होली पर भी हरे रंग का प्रयोग करता हूँ। मेरा वस्त्र. रूमाल तथा पैन हरा होता है किवाड़ों तथा खिड़कियों पर रोगन भी प्राय: हरे रंग का करवाता हूँ।

क्या कहूँ!—हरे रंग को देखने के लिए मेरी आँखें, बस हर समय व्याकुल और लालायित रहती हैं। इसीलिए प्रातः काल उठते ही भ्रमण के लिए निकल जाता हूँ और प्रकृति के हरे रंग को देखकर इन आँखों को तृप्त करता हूँ।

एक बार मैं देहली गया. तो वहाँ से कमरबन्द भी हरे ही लाया। जब प्रभा ने पूछा—'दोनों ही कमरबन्द हरे ले आये।' मैंने कहा—'रानी! एक तुम्हारे पेटीकोट के लिए है।' कहने लगीं—'आप तो हरे रंग के बहुत ही शौक़ीन हो गए।' मैंने मुस्कुराकर कहा—'रानी! तुम्हारी उस दिन की हरी साड़ी ने मेरे हृदय-लोक को सदा के लिए हरा बना दिया है। अब मुझसे हरा रंग दूर न किया जा सकेगा। अब तुम्हें भी मेरी इस रुचि को निभाना ही पड़ेगा।

वह मुस्कुराती हुई बोलीं—'अच्छा स्वीकार'। जैसी आप की इच्छा, वही मेरी। परन्तु संसार तो आपके विचारों के

विपरीत है आप हरे रंग की प्रकृति से प्रेम करते हैं, उसके साहचर्य्य से प्रसन्न होते हैं परन्तु बीसवीं शताब्दी का भौतिकवादी मानव प्रकृति से घृणा करने लगा है। वह दिन प्रतिदिन प्रकृति से दूर हटता जा रहा है।

तभी उसका जीवन कृत्रिम हो गया है—मैंने कहा, इसीलिए उसका जीवन नीरस है। वह अपने स्वास्थ्य को ही नहीं, बल्कि हृदय की शान्ति को भी खो बैठा है। आज के मानव का भौतिक जीवन, शान्ति, सन्तोष, सत्य और न्याय से सर्वथा शून्य हो गया है। ईर्ष्या द्वेष, वैमनस्य और झूँठी प्रतिस्पर्धा में पड़ा हुआ मनुष्य वनस्पति से उदासीन होगया है।

तभी तो जीवन की उद्देश्य-हीन होड़ लगी है। परिणाम क्या होगा? भगवान ही जानें। मनुष्य जो कुछ करता है, अपनी समझ से भला ही समझता है। परन्तु फल तो आम का मीठा और नीम का कड़वा ही मिलेगा।

परन्तु मैं चाहती हूँ कि 'आर्य भूमि, फिर अपने उसी प्राचीन आदर्श को अपना कर सच्चा सुख प्राप्त करे। अधिक प्राचीन तो क्या?—अशोक महान् का ही समय ले लीजिए। भारत कितना उन्नत, समृद्ध और सभ्य था। उस समय योरुप, रूस, अमेरिका और इङ्गलैंड क्या थे? फिर से भारतवासी प्रकृति की रम्य गोद में बैठकर उस परम पिता से उसी सुख और शान्ति का सन्देश पाने लग जायँ। जीवन की कृत्रिमता नष्ट होकर, सरलता, वास्तविकता, सहनशीलता एवं सुशीलता का उच्चादर्श स्थापित हो जाय।'

तुम्हारा विचार अटल है। प्रकृति का पुजारी मानव न केवल मानवेतर ही हो सकता है वरन् और भी ऊपर उठ सकता

है, तभी उसको श्रेय प्राप्त होगा। मेरी भी यही कामना है कि प्रकाशमयी और कल्याणकारी प्रकृति मानव के अन्धकारपूर्ण जीवन को प्रकाश प्रदान करती हुई, उसके अन्तर्जगत को तुम्हारी हरी साड़ी के हरे रंग में सदैव रंगती रहे। "ऐसा ही हो"—प्रभा ने गम्भीर होकर कहा।

५

इसी के फलस्वरूप हमारा दाम्पत्य जीवन प्रकृति का एक स्वाभाविक कुंज है। हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया, प्राकृतिक नियमों के अनुसार होती है। हमारा जीवन वर्ष की छओं ऋतुओं के अनुकूल व्यतीत होता है। प्रकृति हमारे जीवन की सहचरी है। हमें ऋतुराज बसन्त में सुन्दर और हरी लताओं पर विभिन्न पुष्प, आभूषणवत् प्रतीत होते हैं। हारसिंगार. मोतिया, चम्पा, बेला, केतकी, गुलाब आदि अपनी मधुर सुगन्धि से हमारे हृदय-जगत को रूप-रस-गन्ध से भरते रहते हैं। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर हमारे शरीर में नवीन स्फूर्ति, नया उत्साह और अनोखी उमंग का संचार करती है। बौरती हुई रसाल-मंजरी वह मधुर गंध प्रसारित करती है कि 'नंदन-कानन' की कल्पना भी तुच्छ जान पड़ती है। उस स्वच्छ, धवलचन्द्रिका में रजनीगन्धा की मीठी और भीनी-भीनी गन्ध हमारे स्वांस-मार्ग को सुगन्धित कर देती है।

और क्या कहें!—वर्षा की पुरवा, जाड़े की शीतल पछवा और गर्मी की भभकती लू हमें सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करती हैं। माँ प्रकृति की संरक्षता में हमारा शरीर-रूपी गढ़ सब प्रकार दृढ़ अभेद्य और सुरक्षित रहता है। सुन्दर जलवायु, भव्य प्राकृतिक दृश्य और अनुकूल ऋतु-परिवर्तन हमें स्वास्थ्य, जीवन-शक्ति और परमानन्द प्रदान करता है।

मेरे विचार में तो प्रकृति की वह हरी साड़ी द्रौपदी का वस्त्र चीर है जिसका अन्त साधारणतया सम्भव नहीं। प्रलय ही उसका अन्तिम छोर है। गम्भीर समुद्र, विशाल वन-पर्वत, मधुर सलिल प्रवाहिनी सरिताएँ, झरने तथा सरोवर सब उसी की रूप रेखाएँ हैं।

वह हरी साड़ी अनन्त पृथ्वी और आकाश-मण्डल को आच्छादित किए हुए समस्त जड़-चेतन को जीवन-दायिनी शक्ति दे रही है। सभी जड़ चेतन उसके रंग में रंगे हैं। पशु पक्षी उसकी आराधना में तल्लीन हैं। कण-कण और रोम-रोम उसी हरी साड़ी का सूत्र मात्र होकर एक अपूर्व संगठन का रूपधारण कर रहा है।

सारांश यह कि मैं हरी साड़ी का अङ्ग हूँ और वह मेरा अंश है। हम दोनों, एक ही जलाशय की पृथक् प्रतीत होने वाली निर्मल धाराएँ हैं जो सृष्टि के आदि काल से अनन्त पारावार की ओर मधुर मिलन के स्वप्नलोक में विचरती हुई द्रुतगति से चली जा रही हैं। गन्तव्य-स्थान दूर है या निकट—कौन जानता है?

पुरुष की शक्ति प्रभा प्रकृति की हरी साड़ी है या उसके रंग का आवरण मात्र है। वस्तु जगत की वस्तु है या स्वप्नलोक की कल्पना? पाठक ही बतला सकते हैं।

: २ :

शांति-पथ

१

सुधाकर और मोहनलाल लगभग समान अवस्था के दो मित्र थे। दोनों ने बीसवें वर्ष में प्रवेश किया था मित्रता का निर्वाह पूर्णतया होता चला आ रहा था। भविष्य में आने वाले, चाहे किसी भी उद्देश्य से हो, परन्तु अभी तक मित्रता का गुप्त स्वार्थ एक रहस्य ही था।

आजकल मित्रता किसी स्वार्थ के आधार पर खड़ी होती है। जब तक वह आधार बना रहता है, अथवा अभीष्ट-सिद्धि की आशा बनी रहती है, तब तक मित्रता का कार्य चलता रहता है, परन्तु जब आशाभित्ति गिरने लगती है, अथवा गिरने की आशा हो जाती है, तभी से मित्रता में शिथिलता आने लगती है, और एक दिन, मित्रता का विशाल-भवन गिरता ही नजर आता है।

एक दिन सुधाकर जी, अपने परम धार्मिक साधु-सेवी पिता के पास बैठे थे। अकस्मात् ही किसी ने द्वार पर आकर 'नारायण हरि' कहा! चम्पा, जो प्रातःकाल स्नान करके गीता का पाठ कर रही थी, सुनते ही दरवाजे की ओर दौड़ी और किवाड़ों की जंजीर खोलते ही, एक संन्यासी को देखा।

चम्पा ने अत्यन्त नम्रता और श्रद्धा के साथ उस संन्यासी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और भिक्षा दी। वृद्ध संन्यासी ने चम्पा को पहचान कर आशीर्वाद दिया—चम्पे ! "तुम अपना विधवा-व्रत्त पालन करने में सफल हो। भगवान ब्रजबिहारी तुम्हारा मंगल करते रहें"।

इतने में ही चम्पा के पिता और भाई दैवयोग से वहाँ आ गये। उन्होंने भी श्रद्धापूर्वक स्वामी जी को प्रणाम किया और उन्हें बैठक में ले जाकर एक पवित्र मृगछाला पर बिठाया। स्वामी जी उस गृहस्थ की इतनी श्रद्धा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सुधाकर के घर प्रतिदिन ऐसे साधु संन्यासी आते ही रहते थे, क्योंकि अतिथि-सत्कार और साधु-सेवा विशेषकर उस सद्‌गृहस्थ में एक पवित्र कर्त्तव्य समझा जाता था।

स्वामी जी के साथ अनेक धार्मिक विषयों पर चर्चा चलती रही। चम्पा भी पास में बैठी हुई संन्यासी के मुख की ओर दृष्टि लगाये देख रही थी।

एक अपरिचित साधु का, देखते ही नाम लेकर सम्बोधन करना और एक विशेष रूप से आशीर्वाद देना, चम्पा को अवश्य ही चकित कर देने वाला था। वास्तव में वह संन्यासी उसके लिए एक रहस्य था।

संन्यासी को देखकर चम्पा ने भी समझ लिया कि इस मूर्ति के कहीं न कहीं अवश्य दर्शन किए हैं। परन्तु यह स्मरण न हो सका कि किस रूप में और कहाँ देखा है ? परिचय प्राप्त करने और कुछ नामादि पूछने की उत्सुकता हुई, परन्तु संकोचवश चुप ही रह गई।

फिर मन में सोचा—साधु का क्या परिचय ? "साधु—नाम न पूछिये, पूछ लीजिए ज्ञान।" ऐसा ही करना, चम्पा ने भी उचित समझा और मौन रही। स्त्री स्वभाव से ही लज्जावती होती है। नारी-चरित्र की यह भारतीय मर्यादा अभी तक वर्तमान है, जिससे नारी-चरित्र की रक्षा सुलभ है।

आजकल तो देखते ही मिलते ही परिचय प्राप्त करना एक शिष्टाचार माना जाने लगा है परन्तु भारत के नारी-समुदाय में अभी तक पश्चिम की दूषित प्रणालियाँ पूर्णतया अपना प्रवेश नहीं कर पाई हैं। अच्छा ही है, जब तक पूर्व और पश्चिम पृथक् रहें।

स्वामी जी की शास्त्र-चर्चा समाप्त हुई। भोजन का प्रबन्ध किया गया। चम्पा ने स्वयं ही भोजन बनाया, क्यों कि चार वर्ष हो चुके थे, जबकि उसकी माता का देहांत हो गया था। चम्पा ने विधवा होने के पश्चात्, अपने एक मात्र ससुर को घर छोड़कर, पितृ-गृह का ही आश्रय ले रक्खा था। सुधाकर ने भी स्वामी जी की यथा सामर्थ्य सेवा की। पं० रामनाथ ने भी साधु-दर्शन करके अपने जीवन को धन्य समझा और संन्यासी से पुनः इसी प्रकार दर्शन देने की प्रार्थना की।

इस प्रकार रामनाथ जी के परिवार का स्वामी जी से प्रथम परिचय समाप्त हुआ। संन्यासी सन्ध्या होने से पूर्व ही चला गया और कभी कभी इस सद्गृहस्थ को दर्शन देने की प्रार्थना भी स्वीकार कर ली।

इस सत्संग से सब लोग अत्यंत आनंदित हुए। अगले दिन तक उन लोगों को स्वामी जी का उपदेश, उनकी त्याग-भावना एवं सरल प्रकृति याद आती रही। यदि विचार कर देखा जाय

तो विदित होता है कि गृहस्थाश्रम ममतामोह का पुंज है और संन्यास इसके सर्वथा विरुद्ध "सच है साधु किस के मीत ? वे किससे और कहाँ तक मोह ममता करें ?"

संसार के सामने यह समस्या सदा से रही है और रहेगी, कि वास्तविक सुख निवृत्ति में है या प्रवृत्ति में ? ये दोनों सिद्धांत क्रमशः पूर्व और पश्चिम के हैं। वस्तुस्थिति क्या है ? वास्तविक सत्य कहाँ है ? कौनसा विचार ठीक है ? इसका निर्णय न तो अभी हुआ है और न सम्भव ही है, क्योंकि यह प्रश्न बड़ा ही जटिल है।

२

सुधाकर ने अपनी आयु का पच्चीसवाँ वर्ष समाप्त किया। अपने धार्मिक विद्वान और भगवद्भक्त पिता की संरक्षता पाकर सुधाकर ने शास्त्री परीक्षा पास कर ली थी। एक वर्ष में उसे किसी पाठशाला में अध्यापक का स्थान भी मिल गया। पं० रामनाथ के गृहस्थ का भार अब इसी योग्य एवं होनहार नवयुवक पर था। अस्तु उसने भी अपने वृद्ध पिता को तथा अपनी विधवा बहिन को देखकर समयोचित कार्य करने का निश्चय किया।

वास्तव में जो कर्मनिष्ठ. धर्मशील और पितृ-भक्त होते हैं, उन्हें संसार में अपना मार्ग बना लेना कठिन नहीं होता। ऐसे व्यक्ति की भगवान भी सहायता करता है। दूसरे उसकी शुभ विचार धारा भी मार्ग-प्रदर्शन करती रहती है।

रामनाथ जी के लिए ईश्वर भजन के साथ-साथ यह भी आवश्यक हो गया कि कहीं से पुत्र के लिए सुयोग्य, सुशीला एवं गृहकार्यों में चतुर पुत्र-बधू प्राप्त करें। इस कार्य के लिए उन्हें अधिक कष्ट करने की जरूरत नहीं थी। केवल अपने मुँह

से हाँ मात्र कहने की देर थी। जन्मपत्री, कई सुयोग्य कन्याओं के पिताओं की आई हुई थीं। अतः शीघ्र ही निर्णय करके, विवाह निश्चित हो गया। कभी कभी भाग्य से सुअवसर मनुष्य के हाथ में आजाया करता है। ऐसा ही सुधाकर जी के साथ भी हुआ। उन्हें जो बहू मिली, वह भी साक्षात् देवी ही थी। "जहाँ सुमति तहँ संपति नाना" की उक्ति ठीक ही है।

चम्पा भी ऐसी भाभी को प्राप्त करके अपने को धन्य समझती थी। "बहन जी! अब आप भोजन न बनाया करें, मैं ये सब काम स्वयं ही कर लिया करूँगी"—सुशीला ने नम्रता पूर्वक कहा।

अच्छा! जैसी तुम्हारी इच्छा।

आजकल लगभग प्रत्येक गृहस्थ का पारिवारिक जीवन बड़ा ही विषम है, क्योंकि अधिकार-लोलुपता और कर्तव्य-विमुखता दोनों ही पूर्ण रूप से सक्रिय हैं। इसी कारण, कम से कम पचास प्रतिशत गृहस्थी परिवार असंतुष्ट हैं। किससे? घर में ही, एक दूसरे से। क्यों? क्योंकि सब आराम चाहते हैं; प्रत्येक की, कम से कम काम करने और अधिक से अधिक बढ़िया खाने पहनने की इच्छा होती है।

पं० रामनाथ के परिवार में, न तो पुरुष-वर्ग ही ऐसा था और न नारी-वर्ग ही। दोनों के कर्तव्य निश्चित थे और उन्हीं के पालन में वे चारों, तन, मन, धन से लगे हुए थे। फिर तो वह गृहस्थ सुखधाम था, निश्चय ही।

३

मोहनलाल पहले से ही विवाहित जीवन आरम्भ कर चुके थे, परन्तु उनकी असीम वासनाएँ एक घर में नहीं समा सकती थीं।

वास्तव में असंतोष जीवन में अशांति उत्पन्न कर देता है, जिसके लिए मनुष्य को, न जाने कहाँ कहाँ भटकना पड़ता है। सुधाकर के पास कभी-कभी आना जाना रहता था। शुद्ध मैत्री चिरस्थायी हो सकती है। स्वार्थपूर्ण मेल-जोल केवल कुछ दिन की सामग्री होता है।

सुधाकर-मोहन-मैत्री अब अधिक दिन नहीं रह सकती थी, क्योंकि मोहनलाल चम्पा को चाहते थे और सुधाकर शुद्ध मैत्री-भाव, स्वजातीय सहानुभूति और समयोचित परामर्श।

यदि स्वार्थ उचित और किसी के हृदय में ठेस न पहुँचाने वाला हो, तो पूरा हो सकता है, परन्तु रामनाथ और सुधाकर जैसे, शास्त्रानुसार काम करने वाले धर्मनिष्ठ के लिए चम्पा का मोहन लाल से विवाह कर देना, कदापि सम्भव नहीं था।

मित्रों की बातें, मित्र ही जानें मार्ग दो थे और दोनों स्पष्ट। मित्र भी जब दूसरी हवा चलती देखता है तो वह दूसरी ओर बह जाता है। यदि चम्पा की भी अनुमति होती तो भी रामनाथ और सुधाकर कदापि सहमत न होते।

वे लोग समझते थे कि जिस कार्य से हमारे शास्त्र-धर्म का उल्लंघन हो और समाज में बदनामी हो, उसे किसी भी अवस्था में नहीं करना चाहिये। चम्पा परम धार्मिक और अपने विधवा व्रत का पालन करने वाली थी। उससे किसी ऐसे पाप-पंक में गिरने की कोई भी सम्भावना नहीं थी। संसार में क्या अभी एक समान हैं? धर्म और अधर्म दोनों ही विद्यमान हैं। पापी हैं, तो धर्मात्मा भी उनसे कहीं अधिक हैं। इसी मर्यादा के सहारे संसार स्थित है। समय परिवर्तन तो चाहता है परन्तु सबसे नहीं। जो कुएँ में गिरना चाहते हैं, उन्हें कौन रोक सकता है?

जो अपने आचरण की रक्षा में तत्पर हैं, उन्हें कौन डिगा सकता है ? चम्पा भी चट्टान की भाँति अटल थी।

४

आज पं० रामनाथ के घर, फिर उसी दिन की भाँति स्वामी सेवानंद की सेवा हो रही है और शास्त्र चर्चा चल रही है। उनके सदुपदेश रूपी अमृत का सभी आस-पास के स्त्री-पुरुष, मंत्र मुग्ध बने बैठे श्रवण-पुटों से पानकर रहे हैं।

प्रवचन समाप्त होते ही, सब लोग अपने अपने घर चले गये। चम्पा को अब भोजन नहीं बनाना था। सुधाकर की स्त्री ने बना लिया। पहली बार स्वामी सेवानंद एक दिन भी कठिनाई से पं० रामनाथ के घर पर रहे थे, परन्तु अब की बार तीन दिन तक उनका उपदेश होता रहा।

तीसरा दिन समाप्त होते ही स्वामी जी ने अन्यत्र जाने की इच्छा प्रकट की। परन्तु सब लोगों ने और कुछ दिन ठहरने की प्रार्थना की। लेकिन सच्चे साधु-संन्यासी किसी के बन्धन में नहीं रहते। वहाँ तो मौज का सौदा है। स्वामी जी ने प्रातःकाल जाना निश्चित कर लिया, परन्तु एक महत्व पूर्ण कार्य होने को था। वह था, रामनाथ के परिवार का स्वामी सेवानंद से दीक्षा लेना। इस कार्य को, स्वामी जी ने सहर्ष स्वीकार किया।

पं० रामनाथ ने भी उसीदिन से संन्यास ग्रहण कर लिया और घर छोड़कर भागीरथी-वास करने लगे। कभी कभी चम्पा भी दर्शनार्थ उनके पास जाती रहती थी। सुधाकर अपने गृहस्थ का और भी अधिक लगन से पालन करने लगे। मोहनलाल का आना जाना प्रायः अब बंद हो गया था, क्योंकि अब सुधाकर को भी मोहनलाल जैसे स्वार्थी और कपटी मित्र की आवश्यकता नहीं

थी। उसने समझ लिया कि ऐसा मित्र आस्तीन का साँप है जो किसी भी समय अवसर पाकर काट सकता है।

"उदासीन नित रहिये गुसाईं—
खल परहरिये श्वान की नाईं।"

के अनुरूप ही सुधाकर ने मोहनलाल की मित्रता छोड़ दी।

मोहनलाल भी विचित्र व्यक्ति थे। मित्रता की ओट से वासना का शिकार खेलने निकले थे, परन्तु हीरों की खान में उन्हें कोयला कहाँ मिलता? उनकी आशा निराशा में परिणत होगई। मोहनलाल चम्पा को चाहते थे। सुधाकर को फाँसने चले थे, लेकिन ऐसी मुँह की खाई कि अब आना जाना भी बंद हो गया। संसार की गति कैसी विचित्र है! धर्म और अधर्म में आकाश-पाताल का अंतर है। धर्म स्वर्ग नसेनी है तो अधर्म नरक-कूप। परिणाम यही हुआ कि मोहन-सुधाकर मैत्री समाप्त हुई। वह स्वप्न भंग हो गया, निराशा में।

५

स्वामी सेवानंद के विषय में अभी तक किसी को ठीक ज्ञान नहीं था। कौन हैं? क्या हैं? चम्पा का संदेह ठीक था। वास्तव में चम्पा ने स्वामी सेवानंद को, एक बार नहीं अपितु बहुत बार देखा था, किन्तु घूँघट की ओट से। अपने स्वर्गीय पति के घर।

स्वामी सेवानन्द ने अपने एक मात्र पुत्र के देहावसान के पश्चात् संन्यास ले लिया था और अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति एक स्थानीय पाठशाला को दान करदी थी क्योंकि चम्पा तो अपने पिता के पास चली आई थी। बाबू गिरीशकुमार ने यह बहुत ही अच्छा कार्य किया—धन को परमार्थ में लगा कर स्वयं भी अपनी जीवन-धारा को उसी परमात्म-पारावार की ओर प्रवाहित कर

दिया। आपत्ति पड़ने पर, किसी किसी की बुद्धि ठिकाने रहती है!

चम्पा को भाई के पास रहते-रहते पर्याप्त समय हो चुका था। चम्पा तीस वर्ष से वैधव्य व्रत का पालन करती आ रही थी। अब सुधाकर भाई और सुशीला भाभी का घर भी अच्छा नहीं लगता था। किसी पारिवारिक लड़ाई झगड़े के कारण नहीं, किसी ईर्ष्या-द्वेष से नहीं, प्रत्युत एकान्त वास की इच्छा से। उस स्वर्गीय पति का ध्यान करते हुए, ईश्वरोपासना की इच्छा से और वह भी भागीरथी के तट पर, कभी कभी पिता और धर्मपिता के संन्यासी रूप में दर्शन करते हुए। वैराग्य के विचार धीरे-धीरे दृढ़ होते जाते हैं। संसार आसानी से किसी को नहीं छोड़ देता। परन्तु चम्पा के लिए अब संन्यास मार्ग ही श्रेयस्कर था। समय के साथ सबको चलना पड़ता है। जो नहीं चल सकते वे जीवन की दौड़ में मार खाते हैं और निराशा का जीवन व्यतीत करते हैं।

एक दिन चिरकाल तक चम्पा की प्रतीक्षा रही। परन्तु जब वह नहीं आई, तब सुधाकर ने अपनी धर्मपत्नी से कहा—"भद्रे! आज प्रातःकाल से सायंकाल हो गया है, परन्तु चम्पा अभी तक गंगा तट से वापिस नहीं आई हैं। और दिन, दोपहर को, भोजनार्थ अवश्य आती थीं'। थोड़ी देर चुप रहकर सुशीला बोली—'आर्यपुत्र! आज निर्जला एकादशी का व्रत है। भोजन तो उन्हें करना नहीं था। सम्भव है, सूर्यास्त के पश्चात् आवें। चिन्ता की कोई बात नहीं है। कभी-कभी वह देर करके आती हैं। "क्यों?" सुधाकर ने पूछा। "इसलिए कि अब उनका घर में मन नहीं लगता और ईश्वर-भजन में ही अधिक समय लगाती हैं। मेरा स्वयं उनके न होने से घर में मन नहीं लग रहा है"।

'क्या करूँ ?' सुधाकर कहने लगे—'मेरी इच्छा है कि हम दोनों गंगा-घाट पर ही चलें। वहाँ सबके दर्शन भी हो जायँगे, स्नान भी होगा और चम्पा से मिलना भी।'

दोनों चल दिए। घाट पर पहुँचते ही क्या देखते हैं—कि स्वामी सेवानंद का प्रवचन हो रहा है। भक्त-मंडली शांत बैठी है। स्वामी केशवानंद और हरि-रता साध्वी चम्पा भी सबके साथ वहीं उपस्थित हैं। सुशीला और सुधाकर भी चुपचाप बैठकर उपदेश सुनने लगे। ठीक नौ बजे प्रवचन समाप्त हुआ। स्वामी सेवानंद के चरणों का स्पर्श करके सब लोग विदा हो गये। केवल सुशीला और सुधाकर वहीं बैठे रहे। तत्पश्चात् परस्पर परिचय हुआ और अनेक बातें हुईं। सभी आनन्द विभोर थे।

फिर सुधाकर चम्पा से कहने लगे—'आज सूर्यास्त तक तुम्हारी प्रतीक्षा रही'। भैया! 'अब मेरी इच्छा गंगावास करने की है। भगवान तुम्हारे गृहस्थ को सुखी रक्खें। अब मुझे यहीं शांति है। गंगा-वास करते हुए, स्वामी जी के उपदेश सुनने का पुण्य अवसर मिलता रहे, यही मेरी अभिलाषा है। अब मैं शांति पथ से विपथ न हो जाऊँ, यही कामना है'।

सुशीला और सुधाकर दोनों घर लौटे। उस दिन से चम्पा फिर कभी घर न आई और गंगा-तट पर कुटी बनाकर जीवन-यात्रा पूरी करने लगी। समय व्यतीत होता गया। कुछ वर्षों के पश्चात् स्वामी केशवानंद भी परलोक वासी हो गये। चम्पा की साधना, उत्तरोत्तर उग्र तप में परिणत होती गई। सुशीला और सुधाकर का मिलना-जुलना भी होता ही रहा परन्तु चम्पा को, अब घर से मोह न था।

६

मोहनलाल के जीवन में जो अशांति थी उसके विनाश का

भी अन्तिम समय आ ही पहुँचा था। स्त्री का देहान्त होते ही मोहनलाल का संसार सूना हो गया। उनके लिए अब चारों ओर उदासी और निराशा ही दिखाई पड़ती थी। माता-पिता पहले ही परलोक वासी हो चुके थे। संसार का मायामोह नष्ट हो जाने पर मनुष्य को परमात्मा की याद आती है तभी वह संसार को छोड़ कर ईश्वर की ओर जाता है।

मोहनलाल भी अब वैराग्य-मार्ग के पथिक बन गये। पहले भी कभी-कभी गंगा-स्नान करने जाते थे, परन्तु अब नियमपूर्वक जाने लगे। एक शुभ कार्य मनुष्य को दूसरे पुण्य कार्य की ओर प्रेरित करता है। फिर मन में विचार उत्पन्न हुआ कि स्वामी सेवानंद का उपदेश भी सुना करें। फिर तो दूसरे दिन से स्नान के पश्चात् आध घंटा उपदेश भी सुनने लगे।

गंगा स्नान, साधु-प्रवचन और वैराग्य भावना ने मोहनलाल की जीवन-धारा को सुपथ की ओर उन्मुख कर दिया। दूषित विचार धारा, कलुषित कामनाएँ और छल-कपट की भावनाएँ पवित्र होकर ईश्वर-भक्ति में परिणत हो गईं। जिस हृदय में तामसिक विचार थे, वहाँ अब सात्त्विक भावों का उदय आरम्भ हो गया।

मनुष्य परिस्थिति अथवा संस्कारवश पाप कर्म में प्रवृत्त होता है, परन्तु जब उसके शुभ कर्मों का पुण्य उदय होता है, तो कुमार्ग से सुमार्ग की ओर अनायास ही चल पड़ता है। ऐसा ही मोहनलाल के साथ हुआ। उनका अन्तर्लोक भक्ति भावना से प्रकाश में आ गया। पवित्र हृदय ही परमानन्द का अनुभव कर सकता है। मोहनलाल भी आत्मानन्द का अनुभव करते हुए, नियम पालन में तत्पर हो गये।

जीवन की अशांति मिट गई। समय-समय पर भजन कीर्तन में भाग लेने लगे। मनसा, वाचा, कर्मणा परोपकार में संलग्न हो गए। साधु-सेवा, साधु-संगति और साधु-प्रवचन में भी रुचि लेने लगे। घर में अकेले थे। धन पर्याप्त था। अस्तु परोपकार में व्यय होना, धन की उत्तम गति मानते हुए, उसे परमार्थ में ही व्यय करने लगे।

अन्त में मोहनलाल ने भी स्वामी सेवानंद से संन्यास की दीक्षा लेकर गंगा के तट पर अपनी कुटिया बना ली और वहीं रहकर परमतत्त्व के चिंतन में अपना जीवन लगा दिया। उनका लौकिक प्रेम आध्यात्म रूप लेकर आत्मशान्ति का कारण बन गया। वासनालोलुप मोहनलाल, शांति-पथ का पथिक, स्वनाम धन्य, स्वामी मोहनानंद हो गया जो कालान्तर में एक प्रसिद्ध मठाधीश प्रसिद्ध हुआ।

: ३ :

हार-जीत

१

संध्या का समय था। सूर्य अभी अस्त नहीं हुआ था। अस्ताचल की ओर दृष्टि लगी थी। पश्चिम दिशा की शोभा उस रमणी-रत्न के तुल्य थी, जो बङ्गाली लाल साड़ी पहने हुए, आभूषणों से भली प्रकार आभूषित, मस्तक पर सिन्दूर का टीका लगाये हुए, किसी के मिलन की प्रतीक्षा कर रही हो। पशु-पक्षियों और जनसमूह का कोलाहल हो ही रहा था, कि स्टेशन पर आने से पूर्व कुछ दूर पर गाड़ी रुक गई। यात्रियों को आश्चर्य हुआ,—गाड़ी कैसे रुकी? क्या किसी ने संकट सूचक जंजीर खेंच ली? अथवा कोई और ही घटना घटित हुई? परन्तु विशेष बात कुछ नहीं थी। केवल सिगनल नहीं हुआ था। गाड़ी थोड़ी देर ठहरी रही। फिर ज्योंही सिगनल गिरा, ट्रेन प्लेटफार्म पर आ गई।

ट्रेन रुकने ही वाली थी, कि रमाशंकर बाबू ने अपनी नव विवाहिता दुलहिन की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखा, मानों दृष्टिमात्र के संकेत से यह कहना चाहते थे, कि अब घर आ गया, गाड़ी से उतर जायँ। पास में खड़ा हुआ कुली सरकार के कहने मात्र की प्रतीक्षा कर रहा था। सब सामान उतार लिया गया।

ताँगे में बिठाते लाना—जो चाहोगे मिल जायेगा।' इतनी बात सुनते ही, सामान इक्के में रखवा लिया और दोनों बैठ गए। फिर आठों अदद गिन लिए गये। कुली भी लड़ते-झगड़ते एक रुपया ले मरे। ताँगे ने स्टेशन से अकबरपुर की ओर प्रस्थान किया।

२

जो खुशी बेटे वाले को बरात ले जाते समय होती है; बेटी वाले को लग्न भेजते समय होती है और दुलहिन को पहली बार मायके जाते समय होती है—इन सबसे अधिक खुशी नवयुवक को सुसराल से अपनी दुलहिन को दूसरी बार बिदा कराकर घर लाने में होती है।

ज्यों ज्यों अपना घर निकट आता जाता है, वह खुशी बढ़ती ही जाती है। उस समय यदि नवयुवक के पंख लगे हों तो वह अपनी दुलहिन को शीघ्र से शीघ्र उड़ाकर ले जाय और अपने घर ही जाकर दम ले। रमाशंकर को भी कुछ ऐसी ही खुशी थी। ताँगे में बैठे हुए, हर्ष के झूलने में झूलते जा रहे थे। मन में मीठी मीठी गुद गुदी उठ रही थी। दस मिनट में ही ताँगा घर पहुँच गया। सामान उतार लिया गया।

कल्लू ने सवा रुपया ही लिया। कम में नहीं माना। सिन्हा साहब दिखावटी रूप से बहुत कुछ बिगड़े भी, परन्तु ताँगे वाले भी अवसर देख लेते हैं। वे आदमी आदमी को पहचानते हैं। मोटी चिड़िया कभी कभी ही हाथ लगती है। फिर भी सुअवसर का लाभ न उठावें। ऐसे लोग संकोच नहीं करते। 'कल्लू' भी किसी से कम नहीं था। उसने अपना हक़ माँगने में शर्म नहीं की।

कल्लू तो 'जयराम' कहकर चला गया। रमाशंकर और सिन्हा साहब अपनी बैठक में जा बैठे। नौकरों ने सब सामान घर में पहुँचा दिया। एक दो बार, दुलहिन को देखने के लिए खासी भीड़ हो जाती है परन्तु दूसरी बार घर-पड़ोस की स्त्रियाँ ही बहू को उतार लेती हैं।

दुलहिन का जैसा स्वागत, विवाह-गौने को होता है। यदि सदैव ही ऐसा हो, तो वह ससुराल को स्वर्ग समझले और पीहर का जन्म भर नाम भी न ले।

पहली दूसरी बार तो, सास-नन्द भी प्रेम से बातें करती हैं; देवर महाशय भी नई भाभी को देखकर फूले नहीं समाते; ससुर भी नई-नई वस्तुएँ घर में लाते हैं और इसी बहाने अपनी स्त्री से या अन्य बड़ी-बूढ़ी से पुत्रवधू-विषयक कुछ समाचार जानने अथवा सुनने की अभिलाषा करते हैं। पास-पड़ोस की स्त्रियाँ और बालिकाएँ भी बीस बार चक्कर लगाती हैं। इसी चहल-पहल में दुलहिन का समय व्यतीत हो जाता है। नई बहू से काम तो कोई कराता ही नहीं। सास-बुआ आदि घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ, कभी कभी प्यार में, कोई चीज उठवा लेती हैं। तब तो बहू रानी भी झट से मन में फूलती हुई और छम-छम करती आज्ञा पालन करती है। प्रायः ये बातें, विवाह-गौने तक ही सीमित रहती हैं, तत्पश्चात् सब कुछ बदलने लगता है और अति परिचय सम्मान खो बैठता है।

उमादेवी दूसरी बार ससुराल आई थी पट्टाफेर हो जाने से, प्रायः गौने की प्रथा हट-सी गई है। विशेषतः उस अवस्था में, जबकि वर-वधू वयस्क हों। दूसरे, समाज गौने की प्रथा को व्यर्थ भी समझने लगा है।

उमादेवी बड़े आनन्द और सुख से रहती रही और सभी परिवार वालों की आँख का तारा बनी रही। इस प्रकार वह एक मास सुसराल में रहकर भाई के साथ मायके चली गई—। पीहर में पहुँचकर उसने सुसराल की खूब प्रशंसा की और सभी का व्यवहार अच्छा बतलाया।

एक महीने बाद फिर रमाशंकर बाबू बिदा करा लाये और वह उसी प्रकार रहने लगी। एक सप्ताह व्यतीत हुआ। इस समय उसका वह सम्मान न रहा जो उसे पहले मिल चुका था। इस समय, आकाश पाताल का अन्तर था। उमादेवी इन बातों से सर्वथा अपरिचित थी—कि सास-नन्द और बहू में यों ही नोंक-झोंक होते होते तनतनी की भी नौबत आ जाती है। ससुर-देवर की भी दृष्टि बदल जाती है। पति ही केवल ऐसा व्यक्ति रह जाता है जो सब के प्रेम की पूर्ति करता रहे। यदि वह भी पत्नी की उपेक्षा करने लगे तब तो बेचारी बहू को पतिगृह कारागार-तुल्य ही बन जाता है। खेद है कि लड़कियों को विवाह से पूर्व ऐसी शिक्षा नहीं मिलती, जिससे उन्हें शिष्टाचार का ज्ञान हो। पतिगृह में रहकर सर्वप्रिय बनने में सहायता मिले और उनमें सहन शीलता तथा उदारता की भावना उत्पन्न हो जाय। इसके साथ उन्हें दूसरों का मन रखने की कला में भी निपुण होना चाहिए।

३

इस बार उमादेवी लगभग दो महीने सुसराल में रही। सभी के साथ भली प्रकार पटती रही। सास भी प्रसन्न रही; प्रभा भी सीधी-सादी नन्द बनी रही; गिरीश भी प्यारा देवर रहा, परन्तु आगे का भगवान ही मालिक था, जिसकी खबर किसी को न

थी। इसी अवसर पर उमा के भाई आये और उन्हें बिदा करके ले गए।

माइके में, पास-पड़ौस की स्त्रियों ने जो कुछ पूछा उसका उत्तर उमादेवी बड़े ही प्रसन्न मुख से देती गई, जिससे सबको यह विदित हो गया कि सुसराल वालों का व्यवहार अत्यन्त सन्तोषजनक है। सब भले हैं। उमा ने अपनी सखी-सहेलियों में भी सुसराल की यथायोग्य सराहना की। यह सुनकर घरवालों तथा आस-पास वालों को भी अत्यन्त हर्ष हुआ।

प्रेमलता की जड़, जब हृदय में जम जाती है तो धीरे धीरे अनुकूल वायुमण्डल पाकर बढ़ने लगती है। रमाशंकर और उमादेवी के प्रेम में अभी तक दृढ़ता का अभाव था, परन्तु इस बार से, अधिक दिन साथ रहने के कारण, दोनों हृदय-तंत्रियों से समान स्वर निकलने लगा था। इसीलिए इस बार उमादेवी का माइके जाना, रमाशंकर बाबू को अच्छा नहीं लगा। दो दिन बाद ही, उनके लिए जीवन की किसी प्रिय वस्तु का अभाव, उसकी अनुपस्थिति विरह-जन्य कष्ट के रूप में बदल गई। एक सप्ताह बाद ही बिदा कराकर लाना उचित न समझा। आखिर लोक-लज्जा-वश, मन मारकर बैठ गए, और जाने का विचार न कर सके। मजबूरी का क्या इलाज है? एक दो बार माता जी से कुछ इस प्रकार का विचार भी प्रकट किया; परन्तु दाल गलती न देखी।

कहा जाता है कि सच्चे प्रेमी और प्रेयसी के हृदयों में समान रूप से प्रेमाकर्षण होता है। अतः उमादेवी भी कुछ उदास-सी रहती रही, परन्तु स्त्रियों की विरह-वेदना अन्दर ही रहती है; लज्जा उसे बहुत कम स्पष्ट होने देती है। यदि वह प्रकट होती है,

तो अत्यंत भयंकर रूप में। फिर तो वह स्त्री जायसी की नागमती से भी बढ़ जाती है और उसकी विरह-नदी का भयंकर प्रवाह, मान मर्यादा के किनारों को भी बहा ले जाता है, परन्तु फिर भी स्त्रियों की विरह-वेदना पुरुषों की अपेक्षा. बहुत कुछ सीमित रहती है अतः जैसी विरह-वेदना रमाशंकर को हुई होगी, वैसी सम्भवतः उमादेवी ने अनुभव करते हुए भी प्रकट नहीं होने दी। यही समीचीन भी था। उचित और मर्यादा के अनुकूल भी। राम-राम करके एक महीना व्यतीत हुआ। होली का त्योहार निकट आ रहा था। रमाशंकर को, बहू को बिदा कराने भेज दिया। तीसरे दिन उमादेवी सुसराल आ गई। चार दिन बाद ही होली का त्योहार आ गया, जिसे बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। प्रभा और गिरीश ने भाभी के साथ खूब होली खेली। गाँव भर में फाग की धूम रही।

उमादेवी में घर का काम-काज करने की कुछ पहले से ही आदत न थी। माँ-बाप की लाड़ली बेटी, पति की प्राण-प्रिया, फिर घर के काम-धन्धे से, क्यों हाथ लगाती? कुछ दिन तो, जैसे-तैसे करके व्यतीत हुए।

एक दिन नन्द-भाभी की ठन गई। कुछ कहा सुनी भी हुई। जब सास ने ये बातें सुनीं, तो वह भी बहू को बुरा कहने लगी। उधर प्रभा भाई के पास जा रोई।

सारांश यह कि उमादेवी के विरुद्ध मोर्चा लग गया। मन में खटाई पड़ गई। माँ-बेटी ने समझा, बहू तो रानी बन बैठी है। क्या मजाल जो बिना कहे काम से हाथ लगाती हो? किसी न किसी से, ये शब्द, उमा ने भी सुन लिए। फिर क्या था! देवासुर संग्राम आरम्भ हो गया। सिन्हा साहब अभी तक किसी

पक्ष में नहीं थे ; लेकिन कब तक अलग रह सकते थे ? उन्हें भी खबर मिली। उन्होंने रमाशंकर को कहा। रमाशंकर ने बहू को समझाया। उमा ने जब यह सब कुछ सुना तो और भी भुस में आग लग गई।

धीरे-धीरे कलह बढ़ता गया। यहाँ तक कि उमादेवी का सास-ननद, देवर आदि से बोलना-चालना ऐसा ही रह गया। रमाशंकर बाबू का उमा के प्रति प्रेम तो था परन्तु वह घर वालों से बहू की कहा सुनी हो जाने पर पत्नी का पक्ष लेना अनुचित समझते थे।

वास्तव में माता पिता का आतंक उन्हें पत्नी का पक्ष लेने से रोक देता था। एक दो बार तो ऐसा झगड़ा टल गया, परन्तु जब नित्य प्रति यह कठिन समस्या उपस्थित होने लगी तब तो रमाशंकर ने समझ लिया कि 'उमा एक कलिहारी स्त्री है जो मेरा घरवालों से सम्बन्ध छुड़ाना चाहती है।' पति का ऐसा रूखा, बदला हुआ तथा उपेक्षा भरा बर्ताव देखकर उमा को भी यही अनुमान लगाना पड़ा कि पति का दिखावटी प्रेम है। वह घर वालों का अनुचित रूप से पक्ष समर्थन करते हैं। वह मेरे नहीं हैं। अपने घर वालों के ही हैं। मुझे ही बात बात में बुरा कहते हैं। मैं ठीक भी कहती हूँ तो उसे झूठ मानते हैं और उलटा मुझ ही पर दोषारोपण करते हैं। माँ-बहिन के सिखाने में चलते हैं।

उमा के धैर्य का बाँध टूट चुका था। उसे अब इस परिवार में कोई भी अपना नहीं दिखाई पड़ता था, जो उसका पक्ष लेकर उसकी ओर से कुछ कहता। पास-पड़ोस वाले भी यह सब कुछ देखकर चकित थे। उन्होंने भी इस घर के महाभारत की जगह-

जगह निन्दा की। किसी ने बहू को बुरा बतलाया, किसी ने सास-ननन्द का दोष निकाला ; और किसी ने रमाशंकर तथा बड़े बाबू को नपुंसक कहा। घर-घर यही चर्चा रहने लगी। परन्तु इन झगड़ों के समाधान का कोई उपाय अभी तक नहीं निकल पाया था। सब विवश थे। क्या करते ?

४

यदि रमाशंकर बाबू गम्भीर विचारशील एवं स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति होते और उन्हें संसार का पर्याप्त अनुभव होता तो अपना गृहस्थ जीवन सफल बना सकते थे। उनकी चंचल और भावुक प्रकृति झट से किसी एक बात से दूसरी पर पहुँच जाती थी और बिना सोचे समझे ही परिणाम निकाल लेते थे। ऐसे व्यक्ति जो शीघ्र ही किसी बात के लिए अपना निर्णय उपस्थित कर दें, उतावलेपन के दुष्परिणाम का फल चखे बिना कैसे रह सकते हैं।

रमाशंकर को यह दिन न देखना पड़ता यदि वह स्त्री स्वभाव को समझ पाते। परन्तु स्त्री का समझना, उसका गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन करना कठिन तो अवश्य है किन्तु असम्भव तो नहीं। यदि नव विवाहित दम्पति को प्रत्येक के स्वभाव का सरलता से, प्रारम्भ में ही पता लग जाता है तो दोनों का गार्हस्थ्य जीवन सुखी बन सकता था। अन्यथा नहीं।

यदि विशेष कारणवश स्त्री-पुरुष एक दूसरे को समझने में असफल रह जाते हैं, तो उनका जीवन नीरस ही रहता है। ऐसी अवस्था में यदि दैवयोग से उनका निर्वाह होता भी रहे तो भी उन्हें वास्तविक दाम्पत्य-जीवन-सुख प्राप्त नहीं होता।

उमादेवी का स्वभाव भोलेपन का था परन्तु क्रोध की मात्रा

उसके स्वभाव में बहुत अधिक थी। वह स्त्री-सुलभ मोह जाल में पति को फाँस लेने की कला से सर्वथा अपरिचित थी, अथवा ऐसा करने में संकोच करती थी।

कुछ स्त्रियाँ सुन्दर नहीं होतीं, उनमें रूप-लावण्य का अभाव भी होता है परन्त स्त्री-प्रकृति-जन्य सभी गुणों से युक्त होने के कारण अपने पति की दाहिनी भुजा बनी रहती हैं। उमादेवी में दोनों बातों का अभाव था। न तो उसमें सहनशीलता थी और न उसे पति का विश्वास ही रह गया था।

उमादेवी सफल पत्नी हो जाती और रमाशंकर बाबू सुखी जीवन का भोग करते यदि एक ने दूसरे की प्रकृति का प्रारम्भ में ही अध्ययन कर लिया होता। पत्नी पति तभी मिल कर रह सकते हैं जब उन दोनों का सम्बंध-प्रासाद, विश्वास, गुण-ग्रहण, स्वार्थ-त्याग, सहनशीलता, उदारता और प्रेम भाव की सुदृढ़ भित्ति पर बनाया गया हो। नहीं तो उमादेवी और रमा-शंकर जैसा कलह-पूर्ण जीवन व्यतीत करने की सम्भावना हो जाती है। उस गृहस्थ का दुर्भाग्य ही है, जहाँ नित्य प्रति कुछ भी लड़ाई झगड़ा और कहा सुनी होती रहती है।

५

अब उमादेवी को सुसराल का असद् व्यवहार असहनीय होगया, क्योंकि साधारण-सी बात पर भी झगड़ा होजाता था। जब सहनशीलता और उदारभावना की दोनों ओर से कमी हो जाती है, तो फिर घृणा और मनोमालिन्य ही बढ़ता है? सास-नन्द तथा देवर महोदय भी भला क्यों चुप रहने वाले थे!

अन्त में जब यह समाचार ससुर महोदय ने बीस बार कानों से सुन लिया, वह भी बहुत दुखी हुए। परन्तु यह ऐसी आग न

थी, जिसे वह अकेले बुझा सकते थे। मानव में पशुवृत्ति भी होती है। जब वह जाग्रत होजाती है, फिर मनुष्य का जीवन पशु से भी किसी प्रकार कम गिरा हुआ नहीं रहता।

इस प्रकार सिन्हा परिवार में, कहाँ सब देवता ही थे, लेकिन अब सब की राक्षसी वृत्ति होगई। कुछ समय का ही फेर ऐसा आया कि बहू भी उन्हीं जैसी बन गई। किसको दोष दिया जाय? किसको नहीं। फल यह हुआ कि सिन्हा साहब भी बहू को झगड़ालू समझने लगे। वह क्यों न समझते? जब सबने ही विषम रास्ता पकड़ लिया। वास्तव में ताली दोनों हाथों से बजती है, लेकिन बहुत कम आदमी निष्पक्ष विचार करते हैं। फिर क्या था? सभी का मन बहू की ओर से खट्टा होगया।

रमाशंकर भी अकेला चना होकर क्या भाड़ फोड़ता? अब इस झगड़े की शान्ति का उपाय सोचा जाने लगा क्योंकि यह असाध्य होती जा रही थी, और घर-पड़ोस की शान्ति को भी भंग करने लगी थी।

अन्त में सर्वसम्मति से यह ही निर्णय हुआ कि अब की बार बहू को माइके भेजकर फिर यहाँ न बुलाया जाय। यद्यपि रमाशंकर हृदय से ऐसा नहीं चाहते थे परन्तु उन्हें माता-पिता और बहन के सामने इस अन्याय के विरुद्ध कुछ भी कहने का साहस न हुआ। आखिर अनिच्छा से, यह हलाहल रमाशंकर को भी गले से नीचे उतारना ही पड़ा। नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है? अतः रमाशंकर का कहना सुनना या कुछ भी विरुद्ध बोलना, केवल क्रन्दन मात्र ही रहा।

रमाशंकर विचित्र प्रकृति के मनुष्य थे। माता-पिता के

अन्धविश्वासी भक्त थे। माता पिता के विरुद्ध मुँह खोलने का वास्तव में उनमें साहस ही न था। वह ही बहू की स्थिति को परिवार भर में दृढ़ बना सकते थे। परन्तु उन्हें भी उमा के प्रति अब वह पहली-जैसी सहानुभूति न रही थी, क्योंकि बहुत अधिक पका हुआ फल सड़ा-सा मालूम पड़ने लगता है। बार बार उमा की बुराई सुनते सुनते उन्हें भी विश्वास होगया था कि उमा में भी कुछ दोष अवश्य हैं। अस्तु अब उनसे भी किसी सत्य पक्ष-समर्थन की आशा, केवल दुराशा मात्र थी।

उमादेवी को परिस्थिति ने जैसा बना दिया, ऐसी वह कदापि नहीं थी। जो दोष सब पर लागू होता है, वही उस पर भी। परन्तु बहू को सबके अधीन ही रहना पड़ता है। समय पर दो बातें सुननी भी पड़ती हैं। इसके लिए वह अवश्य तैयार हो जाती—अर्थात् उसके स्वभाव में उदारता आजाती यदि पतिदेव उसके अनुकूल आचरण करते क्योंकि स्त्री पति की सहायता पाकर सबके विरोध को सहन कर सकती है। परन्तु जब अपना पति भी पराया हो जाय; वही दब्बू और अविश्वासी बन जाय, तब तो पत्नी को भारी निराशा होती है। उमादेवी के लिए अब माइका ही आश्रय था। सिन्हा बाबू ने उमा के पिता को, पत्र में सब वृत्तान्त लिख दिया, साथ ही उमा को वहाँ बुलाने अपने घर न बुलाने की बात भी खोल कर लिख दी।

बहू को उसके सास-ससुर और पति बलात् छोड़ सकते हैं, परन्तु जन्म देने वाले माता-पिता कन्या को कैसे छोड़ दें? यद्यपि माता-पिता जन्म के साथी होते हैं, कर्म के नहीं, लेकिन कभी कभी बेटी के जन्म और कर्म दोनों, का साथी होना पड़ता है।

उमा देवी के माता-पिता ने भी ऐसा ही आचरण किया। पत्र मिलते ही पुत्र को बेटी के लिवा लाने को अगले दिन ही अकबरपुर भेज दिया।

उमा के भाई को देख कर सिन्हा परिवार को अपार हर्ष हुआ। कैसी विचित्र बात है! अप्रिय वस्तु को दृष्टि के सामने से हटाने के लिए संसार कितनी जल्दी करता है! उमा भी अनुभव करती होगी—"महमान बनकर आयी थी, बदनाम हो निकली"। दूसरे दिन बिदा होकर, उमादेवी माइके पहुँच गई। माता-पिता ने भी सब प्रकार बेटी को निराश और विवश देख कर आश्रय दिया।

६

उमा देवी के सुसराल से, पीहर जानेके, चार महीने बाद ही रमाशंकर बाबू का दूसरा विवाह कर लिया गया। नई दुलहिन राधा का स्वभाव बहुत ही अच्छा मालूम हुआ। राधा की, कभी भी किसी से, लड़ाई तो क्या, कहासुनी भी नहीं हुई। समस्त परिवार उसके शिष्टाचार, मधुर भाषण और सद्व्यवहार से प्रसन्न था। राधा ने अपने पति की पूर्वपत्नी का परिणाम सुनकर बहुत कुछ सीखा और अनुकूल आचरण करना आरम्भ कर दिया।

'रमाशंकर भी उसे हृदय से चाहते थे। सास-नन्द ने भी राधा के आचार-विचार से भली भाँति समझ लिया कि वह अत्यन्त सुशीला आज्ञाकारिणी, विनीता, सहनशील एवं लक्ष्मीस्वरूप है।

पड़ौस की स्त्रियाँ तथा बालिकाएँ सभी राधा के पास उठती बैठती थीं। सभी को उसके पास जाने में खुशी होती, बातें करके

सन्तोष होता और उसका हंसमुख स्वभाव देख कर सभी को परम आनन्द एवं सन्तोष होता। अतः इस परिवार के सभी पुराने घाव धीरे-धीरे भरने लगे, और राधा को पाकर उमा देवी को भूल गये।

इस प्रकार पाँच वर्ष का समय व्यतीत हो गया, परन्तु सर्वगुण-सम्पन्न होते हुए भी राधा को माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। समस्त परिवार वाले और पड़ौसी तक इसके लिए चिन्तित थे। राधारूप चन्द्रमा का यह कलंक सभी को खटकता था। इस अवस्था में राधा को भी, अपना सब कुछ अच्छा नहीं लगता था।

वास्तव में सन्तान के बिना, विवाहित जीवन नीरस है, और शून्य है, इसके बिना, मानव की जीवन लीला। राधा को, रमाशंकर बाबू तथा सभी सिन्हा परिवार वालों को सब कुछ व्यर्थ-सा मालूम पड़ता था। जब कभी पति-पत्नी इस विषय पर चर्चा करते, राधा रोने लगती और कहती—"मुझ पर किसी की आत्मा का अभिशाप पड़ा है।" रमाशंकर खण्डन करते और अनेक प्रकार से आश्वासन देते, परन्तु राधा को शान्ति न मिलती। उसकी यह अटल धारणा थी कि वह उमा देवी का अधिकार छीने बैठी है। इसीलिए उसे यह दिन देखना पड़ा है।

भगवान् की कैसी विचित्र लीला है! संसार में सर्वसुख सम्पन्न शायद कोई हो। किसी को धनाभाव है; कहीं परिवार नहीं; किसी का स्वास्थ्य ऐसा बिगड़ा हुआ है कि उसे जीना मरना एक समान है। कहीं धन-धान्य, परिवार स्वास्थ्य, सम्मान आदि सब कुछ होते हुए भी संतान नहीं है। घर का दीपक बुझा हुआ है।

राधा सी पुत्रबधू पाकर कृपा रानी ने अपने भाग्य को सराहा था। पुत्र के दूसरे विवाह से सुखी थीं। सिन्हा साहब, यों तो सब प्रकार सुखी थे, परन्तु राधा से कोई संतान न होने के कारण चिंतित रहते थे।

अब तो,—'बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही थी। मनुष्य अपने कर्म को नहीं देखता; ईश्वर को वृथा दोष देता है।

एक दिन सब प्रकार सिन्हा साहब हताश होकर उमा देवी को फिर बुलाने का विचार मन में लाये परन्तु उनकी अन्तर आत्मा ने तुरन्त ही उन्हें धिक्कारा—'किस मुँह से उमा को बुलाने की बात सोच रहे हो? कहीं कटी नाक भी जुड़ती है? हाँ! यदि अपनी नाक कटनी स्वीकार करो तो जो करलो थोड़ा है'

एक दिन उन्होंने अपना विचार कृपा रानी से भी प्रकट किया। कुछ समय तक तो वह शांत रहीं, फिर ठंडी साँस लेकर बोलीं—"क्या कहूँ? जिस पुत्र बधू को छोड़ कर पुत्र का दूसरा विवाह कर लिया है, उसे किस मुँह से यहाँ लाने को कहूँ"। दोनों दम्पत्ति इसी उधेड़-बुन में अनेक संकल्प-विकल्प करते हुए सो गए। इसी तरह जब कभी विचार आता, उमा को फिर बुलाने की चर्चा होती परन्तु कुछ निर्णय न कर पाते। यदि दूसरा विवाह न करते तो बुला भी सकते थे। उस समय इतना कठिन काम नहीं था, परन्तु अब तो बड़ा भारी अपमान होता, यदि उमा के पिता भेजने से इंकार कर देते।

यह सब कुछ सम्भव होते हुए भी सबके हृदय में यह भावना उत्पन्न होती, कि शायद उमा देवी से ही, इस घर का

अंधकार दूर हो जाये, ! सम्भव है उसी के द्वारा सबका दुर्भाग्य, सौभाग्य के रूप में परिणत हो सके। किन्तु इसी आशा-निराशा और संकल्प-विकल्प की दुविधा में पड़े हुए सिन्हा परिवार वाले यह भी निश्चित नहीं कर सकते थे कि उमा देवी को फिर यहाँ बुला लिया जाय। कुछ लोग इसका समर्थन करते और कुछ विरोध। जिससे पूछते वह उलटा इन्हीं को मूर्ख और अदूरदर्शी कहता। कभी कभी कोई कहता—'बेटी वाला अवश्य भेज देगा। उसे कुछ भी इंकार नहीं हो सकता।' इसी तरह लगभग छः वर्ष व्यतीत हो गए।

उमादेवी को ससुराल से आये हुए अभी छः महीने ही हुए थे कि उसने अपने माता पिता के घर ही, एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। ससुराल में समाचार भेज दिया कि मरा हुआ बच्चा हुआ था। इस बालक के जन्म से, यद्यपि वास्तविक प्रसन्नता किसी को न हुई थी, परंतु उमा के जीवन का सहारा देखकर सब को संतोष हुआ।

रवि मोहन अब लगभग छः वर्ष का हो गया था। वह अत्यंत सुन्दर और होनहार था। बच्चे को अभी तक इस बात का पता नहीं था कि उसके पिता ने उसकी मां को छोड़ दिया है। फिर जान बूझकर इस परिवार ने बच्चे के सामने, ऐसा कोई प्रसंग भी नहीं आने दिया था। लेकिन कब तक ?

मनुष्य कुछ और सोचता है, परन्तु ईश्वर उसके विरुद्ध परिस्थिति उत्पन्न कर देता है। एक दिन रविमोहन बच्चों के साथ खेल रहा था। उसके एकसाथी के पिता आये और उसे अपने साथ घर चलने को कहा। वह तुरन्त खेल छोड़कर घर चला गया दूसरे दिन, रविमोहन ने अपने साथी से पूछा—कल जो तुम्हें

साथ ले गए थे,— कौन थे ? नरेश ने उत्तर दिया—वह मेरे पिता जी थे।

रवि ! मैंने तुम्हारे पिता जी को नहीं देखा। वह कहाँ हैं ? रविमोहन कुछ उत्तर नहीं दे सका। वह यह तो जानता था कि वह अपने नाना के यहाँ है परन्तु पिता के सम्बंध में उसे कुछ भी ज्ञान नहीं था, क्योंकि वह बहुत दिन से वहीं अपनी माता के साथ रह रहा था। परन्तु अब उसे यह जिज्ञासा हो गई कि उसके पिता कौन हैं ? और वह कहाँ रहते हैं ?

प्रसंग वश ही बच्चे को ध्यान आया। उसी दिन घर आ कर रविमोहन ने अपनी माता से पूछा—'माता जी ! मेरे पिता जी कहाँ हैं ?' यह सुनते ही उमादेवी का दिल भर आया।

वह सोचने लगी—'हाय ! अब तो बड़ी मुश्किल हुई।' उस समय तो उसे जैसे-तैसे करके समझा दिया और वह सुनता सुनता सो गया। लेकिन उमादेवी को रात भर निद्रा नहीं आई। वह चिंता ग्रस्त थी।

हृदय सागर में ज्वार उठता, उथल-पुथल मचती और सुस-राल का सम्पूर्ण चित्र आँखों के सामने आ जाता। मन में कभी क्रोध और कभी निराशा-सी होती। अनेक बातों की स्मृति आती और नष्ट हो जाती। कभी-कभी, सोचती हुई भी कुछ नहीं करना चाहती थी। केवल इसीलिए कि दुःख की याद, और अधिक दुःख का कारण बन सकती थी। वह जिस पुराने घाव को भरने का प्रयत्न करती आई थी आज वह फिर हरा होने लगा। वह इस समय किंकर्तव्यविमूढ़ थी। और विचित्र उलझन में पड़ी हुई थी।

दूसरे दिन बच्चे को फिर पिता जी के बारे में पूछने की बात याद आ गई। अम्मा! 'पिता जी का क्या नाम है? वह कहाँ हैं?' उमादेवी साहस करके बोली—

"रवि! तुम्हें किसने बहका दिया है?"

"किसी ने नहीं नरेश के पिता जी हैं। क्या मेरे पिता जी नहीं हैं? मैं भी उन्हें देखना चाहता हूँ।"

घर के सभी स्त्री-पुरुषों ने रविमोहन को समझाया, परन्तु वह अपनी हठ पर दृढ़ था। उसमें, पिता जी को देखने की इच्छा दृढ़ से दृढ़तर होती गई आखिर उमादेवी ने कहा—"अच्छा तो तुम्हारे पिता जी को पत्र लिखकर बुला दूँगी। वह पत्र पाते ही तुमसे शीघ्र मिलने चले आयेंगे, जाओ अब जाकर खेलो।"

बच्चा संतुष्ट होकर चला गया। उमा के सामने अत्यंत कठिन समस्या थी। वह जानती थी कि उसने रविमोहन के जन्म के अवसर पर मरा हुआ बच्चा पैदा होने की खबर भिजवाई थी। अब उसकी बात का कौन विश्वास करेगा? और फल क्या होगा? सभी यह सोचेंगे—यह बच्चा किसी और का है। ससुराल वालों को कैसे विश्वास होगा?

इस समय अनेक तर्क-वितर्क करते करते उमा का सिर चकरा रहा था, परन्तु हृदय की प्रेरणा हुई—'क्या कहीं साँच को भी आंच है?' फिर सबकी अनुमति से उमा ने पति के पास पत्र लिखकर भेज ही दिया।

उधर रमाशंकर ने स्वप्न में देखा कि एक पाँच छः वर्ष का बालक उसकी गोद में चढ़ने का प्रयत्न कर रहा है, और बार बार पिताजी! पिता जी! कह कर सम्बोधन करता है। अचानक ही

नींद टूटी। देखा तो कुछ भी नहीं है। केवल राधा पड़ी सो रही है। वह रात्रि बड़ी मुश्किल से बिताई। प्रातः काल होते ही अपनी माता जी से स्वप्न की सब बातें सविस्तार सुनाईं। कृपा रानी भी सुनते ही चकित हो गईं और उस स्वप्न का कुछ भी आशय न समझ सकीं। फिर तो यह बात घर में सब के कानों तक पहुँच गई। सभी गंभीर विचार में थे, लेकिन वास्तविकता तक कोई न पहुँच सका।

फिर एक रात्रि को ऐसा ही स्वप्न कृपारानी ने भी देखा कि एक पांच छः वर्ष का लड़का उनकी गोद में बैठा है और दादी ! दादी ! कह कर लड्डू मांग रहा है। कृपारानी ने भी वह स्वप्न सब को सुनाया। जिसने यह बात सुनी असमंजस में पड़ गया। जो बात एक सप्ताह हुआ; दब सी गई थी, फिर आज कौतूहल उत्पादक हो गई।

अब तो घर घर में यही चर्चा आरम्भ हो गई। राधा भी हैरान थी। उसकी दयनीय दशा थी। उसे अपने ऊपर कभी क्रोध आता और कभी उसे निराशा जकड़ लेती। इन दोनों स्वप्नों के बाद तो उसकी दशा और भी सोचनीय हो गई थी।

अब वह समस्त परिवार के विषाद का कारण स्वयं को ही मानकर बहुत दुखी थी। कभी वह सोचती—"यदि मैं चाहती, तो यह विवाह कदापि न होता। मेरे ही कारण उमादेवी पर यह सब आपत्ति आई है। मैं जो निस्संतान हूँ, उसी देवी का अभि-शाप है। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ?" यही मन में सोचती हुई अपने दुर्भाग्य को कोसते कोसते सो गई। परन्तु उसका यह विचार व्यर्थ था। उसका क्या दोष था उसे क्या मालूम था कि वह ऐसे घर में जा रही है जहाँ से उसके पति की पूर्व पत्नी

किसी लड़ाई झगड़े के कारण कभी न आने के लिए माइके भेज दी गई है।

८

रविवार का दिन था। रमाशंकर बाबू को आफिस नहीं जाना था। खाना खाकर, बैठक में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। बाहर से डाकिये ने आवाज दी—बाबूजी! आप का एक पत्र है। यह सुनते ही रमाशंकर बाबू तुरंत उठे और पत्र ले लिया। ज्यों ही लिफाफे को ऊपर से देखा, तो एक कोने पर 'उमा' लिखा हुआ मिला। तुरन्त समझ गए 'यह उमा का पत्र है।' जब से उमादेवी माइके गई थी उसका कोई भी पत्र उनके पास नहीं आया था। बड़ी ही उत्सुकता से लिफाफा खोला, पत्र इस प्रकार था—

अमरपुर
४—७—४४

प्राणधन!

सादर चरण बन्दना।

समाचार यह है कि आपके यहाँ से आने पर, लगभग छः महीने के पश्चात्, मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ था। परन्तु आपको सूचित किया गया कि मरा हुआ बच्चा हुआ था। वह बात झूँठी थी। आपका वह चिरंजीव रविमोहन अब छः वर्ष का हो चुका है। आपको देखने का उत्सुक है। कृपा करके बच्चे का आग्रह पूरा करने का कष्ट करें। सभी अपराधों की क्षमा प्रार्थी—

आपकी दासी
'उमा'

पत्र पढ़ते ही रमाशंकर बाबू की आँखें आनन्दाश्रुओं से भर आईं। शरीर का रोम रोम पुलकित हो गया। बार बार पत्र पढ़ते

थे और आँखों से लगाते थे। उन्हें ऐसा अनुभव हुआ, मानों जीवन का पारस मिल गया है। एक दम उठे और वह पत्र माता पिता, विधवा बहन आदि सभी घर वालों को सुनाया। उस समय सिन्हा परिवार के आनंद की सीमा न थी। दोनों बार के स्वप्नों की वास्तविकता समझकर रमाशंकर ने सबकी अनुमति से अमरपुर जाना निश्चित किया।

अगले दिन ही प्रातः काल की गाड़ी से सुसराल के लिए चल पड़े। शाम को ही वहाँ जा पहुँचे। सास-ससुर से मिले। फिर ससुर जी के साथ बैठक में जा बैठे। इतने में ही रविमोहन खेल कर आ रहा था। बैठक खुली देखकर वहीं आ गया। अपरिचित व्यक्ति को देखकर नमस्ते की और चुपके से नाना जी के पास बैठ गया और देखने लगा। पिता-पुत्र का आकर्षण बढ़ता जा रहा था। रमाशंकर भी बच्चे की अपनी जैसी आकृति देखकर सोचने लगे—'हो न हो, यही रविमोहन हो'।

उनका अनुमान तब ठीक हुआ, जब रविमोहन ने पूछा—'नाना जी ! यह कौन हैं ?' ललितमोहन जी हँसते हुए बोले—'बेटा ! इन्हीं से पूछो, यह कौन हैं ?' फिर तो पुत्र वात्सल्य का मानो समुद्र ही उमड़ पड़ा।

रमाशंकर झट से उठे और बच्चे को गोद में उठा लिया। पिता-पुत्र एक दूसरे को, जिस श्रद्धा और स्नेह से देख रहे थे, उसका वर्णन कठिन है। प्रेम और आनन्द की लहरें उठ रही थीं। फिर गोद में बैठा हुआ रवि मोहन बोला—"आप कौन हैं ?" रमाशंकर भावावेश में कुछ भी नहीं बोल सके। उनकी आँखों में प्रेम और आनन्द के आँसू थे। फिर नाना जी से ही उत्तर मिला—'बेटा ! यही तुम्हारे पिता जी हैं।'

ज्योंही बच्चे ने "पिता जी—यही हैं" सुना, रमाशंकर के गले से लिपट गया। दोनों ही गद् गद् हो रहे थे। पिता-पुत्र का यह मिलन कैसा अपूर्व था! जब उमा देवी को इस मधुर मिलन का समाचार मिला, वह भी आत्मविभोर हो गईं। हर्ष भी था, दुःख भी।

फिर समय पाकर रमाशंकर बाबू उमा देवी से भी मिले। पहले तो उमा उन्हें देखते ही अचेत हो गई, फिर रमाशंकर ने उठाया। सचेत होने पर लगभग छः वर्ष से बिछड़े हुए, पति-पत्नी उसी प्रेम-भाव से मिले। दोनों ही गम्भीर विचार-सागर में मग्न थे। दोनों की विचित्र अवस्था थी।

फिर दोनों के चित्त स्वस्थ होने पर, अनेक बातें हुईं। टूटा हुआ प्रेम-सूत्र पुनः जुड़कर एक हो गया। दोनों ही समय को दोष देते थे और पश्चात्ताप करते करते एक दूसरे के निकट आते जारहे थे। भावार्थ यह कि दो हृदयों के भेद भाव विलीन हो रहे थे और दोनों के हृदयों की कड़ियाँ जुड़ती जा रही थीं।

अन्त में, दोनों ने, एक दूसरे के प्रति, उदार भावना का परिचय दिया। कभी क्षमा, कभी आग्रह और कभी प्रसन्नता की मुद्रा दोनों के मुख पर बिजली की तरह चमक जाती थी। आखिर रमाशंकर ने उमा देवी को सब प्रकार समझा कर, घर चलने को राजी कर लिया। पति का मन देखकर उमा ने भी अपना आग्रह छोड़ दिया परन्तु राधा को कुछ भी कष्ट न देने की प्रतिज्ञा कराली, क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि राधा को उसके जाने से किसी प्रकार का कष्ट हो।

दोनों की अनुमति जानकर, माता-पिता भी उमा को भेजने के लिए सहमत होगए। रमाशंकर बाबू, उसी हर्ष और गर्व से

पत्नी-पुत्र को घर लारहे थे, जैसे कभी गौने की बार लाये थे। अकबरपुर का स्टेशन आगया। वही 'कल्लू' ताँगा लिए खड़ा था। देखते ही बोल उठा—रमा बाबू! घर चलोगे! दुलहिन को लाये हो, बेटा भी साथ है।

"क्या लोगे गंज तक?" रमाशंकर ने पूछा। कल्लू कब चूकने वाला था, तुरन्त बोल पड़ा—'बाबू जी! आज तो ढाई रुपये का काम है—रामजी छोटे बाबू को बनाये रक्खे। 'अच्छा बिठाओ भी'—रमाशंकर ने गम्भीरता से कहा।

ताँगा घर पहुँच गया। इधर सिन्हा साहब कल्लू से एक दो ही करते रहे, उधर कृपारानी पौत्र को गोद में लिए हुए, उमा को घर ले गईं। इस समय इस परिवार के हर्ष और आनन्द की कोई सीमा नहीं थी। सबको ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों रमाशंकर, दुःख-विषाद कहीं छोड़ आये हैं और अपूर्व आनन्द, हर्ष और प्रेम भाव की झोली भर लाये हैं और सभी घर-बाहर वालों को बिना मूल्य बाँट रहे हैं।

राधा भी उमादेवी से इस प्रकार प्रेम भाव से मिली जैसे छोटी बहन बड़ी बहन से मिलती है। उमा ने सास-नन्द के पैर छुए। ससुर को मुख नीचा करके नमस्ते की और देवर को स्नेह भरी दृष्टि से देखा। सभी पास-पड़ौस वाली स्त्रियाँ उमादेवी से मिलीं और अत्यन्त हर्ष का अनुभव किया। आज सिन्हा परिवार ने 'बिगड़ी बनाने वाले' को धन्यवाद दिया। अपने भाग्य को धन्य कहा। 'रवि' को पाकर, इस घर का समस्त अन्धकार नष्ट हो गया।

तत्पश्चात्, समस्त परिवार सुख पूर्वक रहने लगा। उमा और राधा का पारस्परिक व्यवहार बिल्कुल दो सगी बहिनों के समान था। सिन्हा परिवार के लोग, दोनों बहुओं को आदर की

दृष्टि से देखते थे और अब किसी प्रकार की कहासुनी नहीं थी। अब तो सभी को टक्कर लगकर अकल आगई थी। नन्द-भाभियाँ प्रेम पूर्वक बातें करतीं और आनन्द से रहती थीं।

भगवान् की दया से, ठीक एक वर्ष बाद राधा ने भी एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम 'चन्द्रमोहन' रखा गया। रवि-चन्द्र की यह जोड़ी, दिन रात बढ़ती हुई, अपनी आशातीत प्रभा से उमा और राधा के हृदयाकाश को प्रकाशित करती थी। रमाशंकर और सिन्हा साहब भी परम सुखी थे। कृपा रानी भी दोनों पौत्रों को गोद में लेकर आनन्द और शान्ति का अनुभव करती थीं। राधा जैसी पारसपथरी का स्पर्श करके उमादेवी भी स्वर्णमयी होगई। उमादेवी की आशीष पाकर, राधा को भी पुत्र-रत्न मिला।

अब तो इस परिवार के महाभारत का, आनन्द और शान्ति पर्व आरम्भ हो गया था। सच है, समय की ठोकर खा कर टेढ़े से टेढ़े भी सीधे हो जाते हैं। परिवर्तन संसार का नियम है। संसार हार-जीत की तुला में झूलता है।

नगर वाले भी सिन्हा परिवार के भाग्योदय की प्रशंसा करते थे, क्योंकि जहाँ उन्होंने कभी 'महाभारत' देखा था, वह अब आनंद-विलास की वाटिका खिली देखी।

न तो अब उमादेवी को ही किसी के व्यवहार से असंतोष था और न उनमें से किसी को कोई आपत्ति थी। रमाशंकर को, उमा और राधा दोनों के प्रति समान प्रेम था और उनमें भी पति के लिए निष्कपट श्रद्धा और भक्ति थी। धन्य है वह परिवार, जहाँ सुख शान्ति पुनः इसी तरह लौट आती है जैसे पतझड़ सुन्दर बसंत का स्थान ग्रहण कर लेता है।

— —००० — —

: ४ :

क़लमी

१

बूढ़ों के लिए अतीत के सुखों, वर्त्तमान के दुःखों और भविष्य के सर्वनाश से अधिक मनोरंजक और कोई प्रसंग नहीं होता।

'हमारे काने बाबा, रात को सोते समय, ऐसी ऐसी लच्छेदार कहानियाँ सुनाते, कि हम दोनों भाई तथा पास-पड़ौस के बच्चे भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते'।

'उस समय हम भी यह भूल जाते, कि वह हमारे पूज्य हैं, और उन्हें भी इसकी सुध न रहती, कि ये मेरे पोते हैं जिनके सामने मुझे हंसी-मजाक की बातें नहीं करनी चाहिए।'

इसका विशेष कारण यह भी था, कि हमारा जन्म उस समय हुआ था, जब कि हमारे घरवालों को सन्तान-उत्पत्ति की लेशमात्र भी आशा नहीं रही थी। बुढ़ापे की सन्तान अत्यंत प्रिय होती ही है। वृद्ध भी जब बच्चों में बैठ जाते हैं, तब बच्चों जैसे ही बन जाते हैं। उन्हें भी बच्चों को हँसाने में; उन्हें छेड़ने में; और उनके साथ खाने-पीने में बड़ा मजा आता है। शायद वे समझते हैं, कि उन का बचपन बच्चों के रूप में फिर से लौट आया है।

हम दोनों भाई जुड़वाँ उत्पन्न हुए थे। इसलिए हम अपने

माता-पिता, छोटे काने बाबा, और सभी घरवालों के बहुत ही प्यारे थे।

जब हम रात को सिंगाड़े खाते होते, तो काने बाबा भी हमारे पास बैठ जाते और छिले छिलाये सिंगाड़े, कभी माँगकर और कभी छिपाकर खाते रहते। जब हम पूछते – ,'बाबा! हमारे सिंगाड़े कहाँ गए?' तो वह तुरन्त ही उत्तर देते—,'मुझे क्या पता? तुम्हीं को तो सब छील-छील कर खिला दिए हैं, और अब मुझसे पूछते हो सिंगाड़े! मैंने तो केवल अपना कमीशन ही लिया है, अधिक नहीं'। फिर तो हम भी हँसी में शोर मचा देते—'बाबा चोर! काने बाबा ने सिंगाड़े खा लिए हैं।'

जब वह, अपने पोपले मुँह से हँसते, तो हमें ऐसा दिखाई पड़ता मानो जमीन आसमान दोनों मिल गए हैं। हम भी वैसा ही मुँह बनाते, और हँस पड़ते। वह बचपन का समय वास्तव में सुनहरी युग था, जिसकी स्मृति आज भी वैसी ही है।

एक दिन हम काने बाबा के सिर हो गये। बाबा जी! बाबा जी! 'अपने बचपन की कोई रोचक कहानी सुनाओ'। बाबा जी के अक्षय कहानी-भंडार में क्या कमी थी। सुनते ही बाबा जी उछल पड़े। कानी आँख फड़क उठी, और भानमती का पिटारा खुल ही तो गया।

अरे बच्चो! सुनो भी। फिर तो वह ऐसे रोमांचित होकर बोले, मानो, उनके बचपन की वह रामकहानी सजीव होकर, उन की आँखों के सामने नाचने लगी हो। तुरन्त ही बाबा की कहानी आरम्भ हो गई—

'मैं मिडिल स्कूल में पढ़ता था। उस समय मैं सातवीं कक्षा

में था और सतीश पांचवीं कक्षा में पढ़ता था। उसको सब लड़के क़लमी-क़लमी कहते थे'।

'क्यों कहते थे? बाबा जी! बतला तो दो!' इसका कारण यही था, कि उसकी सूरत बिल्कुल क़लमी आम जैसी थी। उस का शरीर गोल-मटोल, कुछ-कुछ भारी और चोंचदार नाक थी। और उसके क़लमी कहे जाने का विशेष कारण यह था, कि वह क़लमी आम से बहुत चिढ़ता था।

मतलब यह कि क़लमी आम उसकी चिढ़ पड़ गई थी। केवल इसीलिए, कि वह आम को देखते ही आग बबूला हो जाता था। जहाँ किसी लड़के ने आम दिखाया कि उसकी आफ़त आई।

'अजी बाबा जी! क्या वह काना भी था'? 'हाँ! हाँ! उसकी आधी आँख चौपट थी।' 'क्या आपकी तरह से?' 'नहीं इतनी नहीं—कुछ कम'।

'फिर आगे'।

'अच्छा! तो एक दिन हम चार लड़के सलाह करके छोटी छोटी अम्बियाँ जेब में भर लाये। किसी दूसरे लड़के को पता नहीं दिया; और न उस भौंदू को ही'।

'बीच की छुट्टी समाप्त होते ही पढ़ाई आरम्भ हो गई। मैं चुपके से सतीश के पास जा बैठा और उससे बोला—,'देखो सतीश! बाहर तुम्हारे नाना जी खड़े हैं। वह बहकाये में आ गया। वहाँ कोई भी नहीं था। मैंने उसे चकमा दिया था।

जितनी देर उसके जाने आने में लगी उतनी ही देर में हमने दस बारह अम्बियाँ उसके बस्ते में रखदीं। कुछ दवात में डालीं, और उसके कोट में रखदीं। सतीश अपनी जगह पर ही निराश

होकर आ बैठा। इतने में ही मुंशी जी आगए और पाठ पढ़ाने लगे।

ज्यों-ज्यों अम्बियों की गंध उसकी नाक में पहुँचती वह व्याकुल होता और दाँत पीस-पीस कर रह जाता। मुंशी जी पूरे यमदूत थे। उनके सामने किसी का भी साहस न था, जो चूँ भी करता। सतीश भी दम घोटे, जला-भुना, नाक-भौं सिकोड़े और मनमारे बैठा हुआ सुनता रहा।

सतीश की व्याकुलता कब तक छिपी रहती? मुंशी जी ने ताड़ लिया—अवश्य कुछ 'दाल में काला' है। वह डाटते हुए बोले—,'क्यों बे सतीश! यह क्या हो रहा है? बस्ते में बार-बार क्या देखता है? कभी उठता है, कभी बैठता है? आखिर क्या माजरा है?'

. यह सुनते ही सतीश सटपटा गया। मुझे उसकी दशा देख कर हँसी आ गई और मैं नीचा मुँह करके मुंशी जी की दृष्टि बचाकर खूब ही हँसता रहा।

सतीश जब न बोला तो मुंशी जी को बहुत बुरा लगा। मुंशी जी चकित रह गए। क्या मामला है? वह कुछ भी न समझ पाये। फिर उन्होंने सतीश को खड़ा किया और कई बार पूछा—'क्या बात है? क्या हुआ?' परन्तु सतीश कुछ न बोला, क्योंकि वह आम शब्द का कहना भी एक बड़ा भारी पाप समझता था। फिर किसी की शिकायत भी कैसे करता? चुपचाप मिट्टी का माधो बना, खड़ा रहा। सभी लड़के नीचा मुँह किये मुस्कुरा रहे थे।

'सतीश फिर भी न बोला, तब तो मुंशी जी ने तीन-चार बेंत ऐसे जोर से लगाये कि सतीश झल्ला गया और बस्ते में से,

दवात में से तथा कोट की जेब से अम्बियाँ नीचे गिराता हुआ, भीगी बिल्ली सी सूरत बनाकर बोला—,'ये सब लड़के मुझे बहुत तंग करते हैं !

फिर तो सब लड़के एक स्वर से चिल्ला उठे—,"अजी मुंशी जी ! देखो तो !—सतीश घर से जेब में और बस्ते में अम्बियाँ भर लाता है; और चुपके चुपके, छिपा-छिपा कर, कक्षा में बैठा हुआ खाता रहता है।"

मुंशी जी ने पूछा—'क्यों बे ! क्या बात है ?' सतीश पहले तो चुप रहा फिर बोला—'नहीं जी, ये सब झूंठी बातें लगाते हैं। मैं घर से नहीं लाया, यहाँ ही किसी ने जेब में रखदीं हैं।'

झूंठा कहीं का, पाजी ! कहते कहते मुंशी जी ने खूब ही खबर ली। क्योंकि मुंशी जी यह नहीं जानते थे कि सतीश आम से चिढ़ता है। फिर हम लोग ऐसे मूर्ख भी नहीं थे कि मुंशी जी को यह भेद बतलाकर अपनी मरम्मत कराते।

'बाबा जी ! फिर क्या हुआ' ?

होता क्या ? पढ़ाई समाप्त होने पर, सब लड़के घर चले गए और कलमी भी अपने घर चला गया।

२

हमने कहा—'बाबा जी ! आप तो बचपन में बड़े ही दंगाई थे।'

और अब क्या कुछ कम हैं। कौन नहीं होता ? सभी होते हैं। तुम नहीं हो क्या ? देखो बेटा ! जो बचपन में शैतान नहीं होता, उसे बुद्धू समझो ?

'बाबा जी फिर क्या हुआ ?'

बस उसी दिन किसी से सतीश को मालूम हो गया कि मैं ने ही उसके बस्ते और जेब में अम्बियाँ डाली हैं फिर तो, जहाँ कहीं वह मुझे मिलता, मैं उसे क़लमी कहकर सम्बोधन करता। वह और भी चिढ़ता! कभी गालियाँ देता। कभी मेरे ऊपर मिट्टी फेंकता; और कभी मेरे ऊपर थूकने की कोशिश करता।

मैं भी मौका पाकर, उसे पकड़ लेता और दो चार चपत लगा देता। वह टें, टें, करता, घर का रास्ता लेता। लेकिन हमारा क्या बिगाड़ सकता था?

बाबा जी! आम तो सभी को अच्छा लगता है। सभी इसे चाव से खाते हैं। अनेक प्रकार आम का प्रयोग करते हैं। फिर सतीश आम से क्यों चिढ़ता था?

'न जाने क्यों' उसे घृणा थी?

वसन्त ऋतु में जब से आमों पर बौर आने लगता, तभी से उसकी आफ़त आ जाती है। एक एक दिन उसे काटना मुश्किल हो जाता। न घर चैन, न मार्ग में, और न स्कूल में।

इसीलिए सतीश का 'कलमी' नाम कस्बे भर में प्रसिद्ध हो गया। घर से निकलना भी उसके लिए, नित्यप्रति एक नई आपत्ति थी। वह जहाँ कहीं जाता, छोटे बड़े, आबालवृद्ध सभी उसे कलमी-कलमी कहते। इसलिए उसका नाक में दम था।

एक दिन मैं छुट्टी होने पर स्कूल से आ रहा था। कलमी दो मिनट पहले चल दिया था। मैंने रास्ते में देखा कि चार लड़कों ने कलमी को लिटा रक्खा है और उसके मुँह में बलात आम का रस निचोड़ रहे हैं और मजा ले रहे हैं।

यह देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। एक लड़के से आम छीन

कर, मैंने भी उसके मुँह में दो तीन बूँद आम का रस निचोड़ ही दिया। मुझे इस काम में ऐसा आनन्द आया, मानों क्या कुछ मिल गया! फिर तो जो भी आता वही इस पुण्य काम को करता।

मुझे ऐसा मालूम हुआ—शायद, आज सभी लड़के क़लमी के मुँह में आम का रस निचोड़ने के महान् पुण्य को प्राप्त करके ही रहेंगे

क़लमी के मुँह में ज्योंही आम का रस जाता कि वह तुरन्त थूक देता और कभी निचोड़ने वाले के मुँह पर एक दो घूँसे भी जमा देता, परन्तु फिर भी, इस महायज्ञ में आहुति पर आहुति पड़ रही थी। अंत में. फिर किसी रास्ता चलने वाले ने सतीश को छुड़ाया और उसे घर जाने दिया।

जो भी रास्ता चलने वाला आता, वही सतीश को समझाता—तुम व्यर्थ आम से चिढ़ते हो? जितना तुम बुरा मानोगे, उतना ही तुम्हें लड़के अधिकतंग करेंगे। देखो ! तुम्हें चिढ़ना नहीं चाहिए, बल्कि चुप रह जाना ही ठीक है। एक चुप सौ को हराती है। सतीश—'हाँ ठीक है, सच है, तो कह देता, परन्तु जब अवसर पड़ता, उससे विरोध किये बिना न रहा जाता। वह 'चिकना घड़ा' कुछ भी कार्यरूप में नहीं कर पाता था।

सच है किसी भी आदत का पड़ जाना सरल है, परन्तु उस का छूटना कितना कठिन है, इसका अनुमान सतीश को देखकर ही लगा लीजिए। इसीलिए बच्चों को ऐसे-वैसे स्वभाव से बचाना चाहिये। उनकी बुरी आदत छुड़ानी चाहिये।

३

एक बार क़लमी अपने बड़े भतीजे की बरात में गया था। गर्मी का मौसम था। आमों की फसल थी। जहाँ पर वह

बरात गई थी, वहाँ के क़लमी आम बहुत ही प्रसिद्ध थे।

जब संध्या समय बरात के भोजन का प्रबन्ध हुआ, तो पत्तल पर कचौरी, शाक, मिठाई, पापड़ और एक एक क़लमी आम सभी बरातियों को परोसा गया।

'ज्योंही परोसने वाले ने क़लमी की पत्तल पर आम रक्खा कि उसने सारी पत्तल को उठाकर दूर फेंक कर मारा। सब बराती और बेटी वाले कलमी की यह हरकत देखकर चकित रह गए। चारों ओर से परोसने वाले बराती घराती दौड़ पड़े। जो आता यही प्रश्न करता—'क्या हुआ? लड़के को क्या हो गया? क्या यह लड़का पागल है?' सारी बरात में कोलाहल मच गया। जब कोई विशेष कारण पत्तल फेंकने का न मालूम हुआ तो, फिर सभी मुक्तकंठ से कहने लगे—'बड़ा ही दुष्ट लड़का है। ऐसे लड़के को बरात में नहीं लाना चाहिए था।'

तत्पश्चात् क़लमी के पिता ने सबको हाथ जोड़कर शान्त करते हुए बतलाया—सतीश आम नहीं खाता है। इसे आम से घृणा है। इसीलिये इसने भोजन की पत्तल फेंक दी है। अब बिना आम के खाना परस दीजिए। समझे! तब उस चाण्डाल ने भोजन किया। बेचारे सभी बराती और विशेषतः बेटी वाले अत्यन्त लज्जित हुए।

'बाबाजी! क्या आप भी बरात में गए थे'? गया न होता, तो असली बातें कैसे सुनाता? मैं बरात में गया था और मैंने क़लमी की वह करतूत स्वयं आँखों से देखी थी। मैंने उस समय देखा—'क़लमी का चेहरा लाल था। उसकी आँखों से क्रोध की ज्वाला निकल रही थी और मुँह से घबराहट के साथ साथ, थूक की बूँदें गिरती जाती थीं। उसका समस्त शरीर

काँप रहा था। जो भी क़लमी के बारे में सुनता आश्चर्य प्रकट करता।

वास्तव में संसार विचित्रताओं का आगार है। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार में सम और विषम सभी प्रकार की वस्तुएँ और प्राणी वर्त्तमान हैं।

जो वस्तु एक का आनन्द-साधन है वही दूसरे व्यक्ति का घृणा-पात्र है। यदि आम जैसे मधुर, देवदुर्लभ फलराज से घृणा करने वाला, उसका तिरस्कार करके, उठा फेंकने वाला और उसके नामोच्चारण मात्र से भी नाक-भौं चढ़ाने वाला प्राणी, यदि ईश्वर न बनाता तो उस लीलामय भगवान की लीला पूरी न होती।

४

संसार बदलता जा रहा था, परन्तु क़लमी ने क़लमी से प्रीति नहीं की और उसने कभी भी आम को आदर की दृष्टि से नहीं देखा।

अब क़लमी बचपन से, युवावस्था को प्राप्त हो गया था। उसके माता-पिता ने उसका विवाह कर दिया। उसकी बरात में किसी को भी आम नहीं परोसा गया, क्योंकि बेटी वाले ने क़लमी की रुचि का ध्यान रखकर ही ऐसा करना उचित समझा था।

'बाबाजी! विवाह क्या होता है? यह क्यों होता है?'

देखो! विवाह एक सामाजिक समझौता है, जिसके अनुसार एक पक्ष की लड़की और दूसरे किसी पक्ष का लड़का, समाज के चार भाइयों की अनुमति से सन्तान उत्पन्न करने के लिए गृहस्थाश्रम भोग करते हैं।

'मेरा भी विवाह हुआ था। तुम्हारी कन्नो दादी मेरी पत्नी है। तुम्हारे पिताजी का भी विवाह हुआ था, तभी तुम दोनों उत्पन्न हुए।

क़लमी का भी विवाह हो गया। उसके घर भी नई दुलहिन आ गई। कभी तुम दोनों का भी विवाह होगा। हँसते क्या हो! क्या तुमने सन्तू का विवाह नहीं देखा? क्या उसकी बरात में नहीं गए?

हाँ! हाँ! जब सन्तू घोड़ी पर चढ़ा था, सिर पर मुकुट सा बाँधकर कहीं गया था और उसके साथ उसके पिता, भाई, बाबा और दस बारह आदमी गए थे। तीन दिन के बाद, वह एक लड़की को अपने साथ ले आया था।

अच्छा तो जब क़लमी की दुलहिन. बेचारी अनजान, उसके खाने के लिए क़लमी आम लाई तो क़लमी बहुत बिगड़ा। देखते ही गालियाँ बकने लगा और उसके हाथ से तश्तरी छीन कर कूड़े पर फेंक दी।

बाबा जी! उसकी स्त्री भी सोचती होगी—किस जानवर से पाला पड़ा है। नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है। हिन्दू स्त्री अपने पति में अनेक दुर्गुण देखती हुई भी उसे अपना देवता ही समझती है। उसकी पूजा ही करना अपना धर्म मानती है।

हाँ तो! क़लमी कभी अपनी स्त्री को बुरा कहता और कभी उसकी ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखता। तश्तरी तो चकनाचूर हो ही गई थी।

'बाबा जी फिर क्या हुआ?'

'हुआ तुम्हारा सिर।'

आम नाली में जा गिरा। दुलहिन डर गई और क़लमी की कलई खुल गई। फिर कलमी की माँ ने बहू को समझाया --'देख बेटी! हमारा सत्तो, आम नहीं खाता है। उसे आम खाना तो क्या! देखना भी अच्छा नहीं लगता। फिर कभी इसे आम दिखाने की भी भूल नहीं करना। कौन जाने? तुझे ही मारने लग जाय। हम सब इससे छिप कर आम खाते हैं समझी या नहीं।'

बहू भी अपना सा मुँह लेकर लज्जित-सी और खीजती-सी अपने कमरे में जा बैठी।

कलमी फिर बैठक में चला गया।

कलमी की बहू ने भी उस दिन से आम खाना छोड़ दिया।

'बाबा जी! उसने क्यों छोड़ दिया?'

ठीक इसी तरह—जैसे दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र आखों से अंधे थे। तो उनकी स्त्री गांधारी, जो पतिव्रता थी, अपने पति का मन रखने के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे रहती थी।

इसी तरह कलमी की बहू ने भी, कलमी को प्रसन्न करने के लिए आम का देखना छूना और खाना तक छोड़ दिया।

'बाबा जी! यह बात हमारी समझ में नहीं आई।'

'कौन सी बात?'

पट्टी बांधने की।

कोई बात तभी समझ में आती है, जब समझ पक जाती है। अभी, तुम्हारी समझ कच्ची है। जरा पक जाने दो। बड़े हो कर सब कुछ समझने लगोगे।

अच्छा बाबा जी ! जैसे आपकी आधी आँख गड़बड़ है तो कन्नो दादी ने पट्टी क्यों नहीं बांधी ? क्या वह पतिव्रता नहीं है ?

नहीं बेटा ! तुम बार बार उस कलमुँही का नाम मेरे सामने मत लो । मेरी उसकी नहीं बनती । क्या तुम देखते नहीं हो कि मैं तुम्हारे घर ही रोटी खाता हूँ और उसके घर का पानी तक नहीं पीता ?

यदि कन्नो दादी अपनी एक आँख पर पट्टी बाँध ले, तो क्या तुम उसके घर रोटी खाने लगोगे ?

'कभी नहीं ।'

'क्यों ?'

अब क्या खाऊँगा ! ५० वर्ष हो चुके हैं मेरा उससे पास पड़ौस का-सा भी सम्बंध नहीं । खाने की बात तो बहुत दूर है ।

बाबा ! बाबा जी ! अब कलमी की कहानी पूरी करो, हमें नींद आ रही है ।

'अभी लो ।'

हाँ तो—क़लमी की बहू ने भी आम खाना, लेना और उसका छूना तक छोड़ दिया । जब क़लमी का लड़का बड़ा हुआ तो उसने दूसरे बच्चों को आम खाते देखा । वह तुरन्त अपनी माँ के पास आकर रोया और लगा कहने—माँ आम खायँगे—माँ आम लेंगे ।

माँ झल्ला कर बोली—जा अपने पिता जी के पास ! बच्चा तुरन्त ही क़लमी के पास जा पहुँचा और लगा दी वही रामधुन ।

कलमी झुँझला गया। क्रोध में भर कर लड़के की भुजा पकड़ी और जमीन पर दे पटका। 'धड़ाम' की आवाज जो हुई तो कलमिन दौड़ी और बच्चे को उठाकर छाती से लगा लिया। एक घण्टे में बच्चे को होश हुआ।

यद्यपि इस घटना से कलमी की स्त्री को बहुत दुःख हुआ, परन्तु घर का मरन, जगत की हँसी वाली उक्ति थी। क्या करती? बेचारी चुप-चाप, आँसू पीकर रह गई। पति की शिकायत किससे करती? बच्चे को समझाया और मिठाई देकर बहला दिया।

५

धन्य हैं! ऐसे पति और पत्नी, जो सदा मेल से रहते हैं। तुम्हारी कन्नो दादी तो रावण की बहिन है।

'बाबा जी! रावण की बहिन कौन थी?'

अरे! वही नकटी, बूची, निर्लज्ज शूर्पणखा जिसने सीता को चुराने के लिए रावण को भड़काया।

'ता दिन रामलीला नाहीं देखन जात रहे।'

'अच्छा बाबा जी! क्या क़लमी ने फिर कभी आम नहीं खाया?' 'कैसे खाता?' 'क्यों खाता?' न उसने खाया और न घर में किसी को खाने दिया।'

'वह तो रावण के समान था, जिसने न तो स्वयं राम का नाम लिया और न किसी राक्षस को लेने दिया। विभीषण न जाने कैसे राम का भक्त बना रहा?

जब विभीषण ने राम का पक्ष लेकर रावण को समझाया तो रावण ने विभीषण के एक लात लगाई।

'क्या क़लमी ने भी ऐसा ही किया?'

क्यों न करता ? उसने भी कई बार अपनी स्त्री को, बच्चों को आम मांगने पर मारा, फटकारा और भूमि पर पटक दिया।

धन्य है। कलमी, जिसने अपने व्रत को निभाया, और धन्य है तुम्हारी कन्नो दादी भी जो ५० वर्ष से सीधा मुँह करके एक दिन भी मुझ से नहीं बोली।

बाबा जी ! आप भी धन्य हैं, जो एक बार भी कन्नो दादी को नहीं मनाया।

वह कभी मानने वाली नहीं है। उसे मनाना अपना सम्मान खोना है। लातों के भूत, बातों से नहीं मानते ! समझदार स्त्री पति का रुख देखकर, तदनुकूल आचरण करती है।

'मुझे तो कलमी पर आश्चर्य होता है।'

'कैसे ?'

तुमने अभी सुना है कलमी अपनी धुन का पक्का निकला।

बचपन से जवानी और फिर बुढ़ापा आ पहुँचा, परन्तु उसने 'कलमी' नाम सार्थक कर दिखाया। जीवन भर आम का कट्टर शत्रु रहा। न उसने कभी आम देखना चाहा, न छूना ही पसन्द किया और आम खाने का विचार तो शायद उसने स्वप्न में भी कभी नहीं किया होगा।

'हम तो कलमी को कुछ भी अच्छा नहीं समझते, लेकिन कन्नो दादी हमें बहुत प्यारी हैं।'

'मैं तुम्हारी बातों से सहमत नहीं।'

'क्यों ?'

'तुम जिसे अच्छा समझते हो, मैं उससे घृणा करता हूँ।'

'हम उसे अच्छा नहीं कहते, जिसे आप अच्छा कहते हैं।'

'विचारों की एकता कैसे हो सकती है।'

'तुम बच्चे, मैं बूढ़ा।'

'बाबा जी! बतलाओ न, वह कलमी कहां गया?'

तंग आकर अब वह अपना कस्बा छोड़ कर, दूसरी जगह रहता है। वहाँ भी वह ऐसा ही प्रसिद्ध है जैसा अपने कस्बे में था।

'क्यों?'

'क्या नाम और काम आदमी को छोड़ता है?'

जब विचार पक जाते हैं, फिर उनमें परिवर्तन कठिन होता है जैसे कि मेरे और तुम्हारी कन्नो दादी के विचार अटल हैं।

ईश्वर को मायावी इसीलिए कहना ठीक है कि उसने सतीश 'कलमी' और कन्नो कुबड़ी को बना कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

जैसे तुम दोनों ने हमारे कुल का दीपक बुझने से बचा लिया, इसी भांति कलमी और कन्नो ने भगवान की लाज रक्खी है।

बाबा जी! जो कमी रही होगी वह आपसे पूरी हो गई होगी।

ऐसा ही समझ लो।

अच्छा! तो अब सोना चाहते हो। 'हां जी! हां जी!'

लेकिन एक बार प्रेम से कलमी की जय! कन्नो की जय! तो बोलो! दोनों बच्चे एक साथ जोर से बोल पड़े—'काने बाबा की जय। कन्नो दादी की जय! सतीश कलमी की जय! फलराज आम की जय!

: ५ :

अनमोल मोती

पंकज

१

पुण्य सलिला भागीरथी के तट पर एक छोटा सा गाँव था, जिसे रामगढ़ कहते थे। यह गाँव कुछ समय के पश्चात् गंगा की बाढ़ में बह गया। अब उसके चिन्ह मात्र रह गये थे।

उसकी प्राकृतिक शोभा का अनुमान केवल वे ही लगा सकते हैं, जिन्होंने कभी किसी नदी के तटवर्ती गाँव या नगर की प्राकृतिक शोभा को, स्वयं अपनी आँखों से देखा है।

लेकिन फिर भी, मैं बतलाये देता हूँ, कि अनेक सुन्दर दृश्यों का एक ही स्थान पर समन्वय सम्भवतः न तो मैंने कहीं देखा ही है, और न किसी पुस्तक में पढ़ा है। यह ग्राम भी ऐसा ही सुन्दर था।

समझ लीजिए, वह गाँव नवरस-उत्पन्न करने वाली, विभिन्न प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण था। उसके तीन ओर गंगा की पवित्र धारा बहती थी, और एक ओर पर्वत मालाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं।

वहाँ के, साधारण से साधारण, स्थान का दृश्य, भी चित्ताकर्षक, मनोहर और प्रकृति का शृंगारदान था।

उसी ग व में एक पहाड़ी के घर मेरा जन्म हुआ था। मेरी दादी ने, मेरा नाम पंकज रक्खा। मेरे पिता श्रमजीवी थे। कभी मजदूरी करते, और कभी लकड़ी काट कर बेचते थे।

इन्हीं दोनों व्यवसायों से हमारे कुटुम्ब का पालन होता था। आजीविका का कोई दूसरा साधन नहीं था क्योंकि खेती करने के लिए हमारे पास न तो भूमि थी और न हल बैल ही थे।

जब कभी मजदूरी न लगती, तो उस दिन भर पेट भोजन भी नहीं मिलता था। हमारे घर में, एक गाय थी, जिसके लिए, नित्य प्रति घास खोद कर लाना मेरा काम था। मेरा बहुत कुछ समय उसी गाय को चराने, उसकी देख भाल करने और उसका दूध निकालने आदि कार्यों में व्यतीत होता था। उस समय मेरी आयु बारह वर्ष की थी।

एक दिन की घटना है, कि मैं नदी तट पर घास खोद रहा था। जेठ का महीना था। दोपहर का समय, कड़ी धूप पड़ रही थी।

अकस्मात् मैंने एक आदमी को अपनी ओर दौड़ते हुये आते देखा। जब यह निकट आ गया तो मैंने देखा कि वह एक साधु था। उसका शरीर खून से तर हो रहा था। शरीर पर अनेक घाव थे; जिनसे रक्त की अविरल धार बह रही थी।

रीछ अब भी उसका पीछा कर रहा था। मेरे पास आकर साधु को शांति मिली। उसकी घबराहट कुछ कम हुई।

फिर हम दोनों वहाँ से भाग कर दूर झाड़ियों में छिप गए और देर तक वहीं छिपे रहे। जब लगभग दो घंटे हो गए तो हम बाहर निकले, और दूर तक देखा, परन्तु रीछ का पता नहीं था।

हमने समझ लिया वह लौट गया है। इतने में ही बन्दूक की गोली के चलने का शब्द सुनाई पड़ा। हमारा अनुमान था सम्भवतः रीछ या तो गोली से मारा गया, या गोली की आवाज से डर कर भाग गया होगा।

अब हम दोनों निश्चिन्त थे परन्तु स्वामी जी की दशा बहुत सोचनीय थी। ज्यों ज्यों रक्त-स्राव अधिक होता जा रहा था, स्वामी जी अचेत होते जा रहे थे। मैं भी स्वामी जी को देखकर चिन्तित हो गया। बार बार सोचता था—'क्या करूँ?' परन्तु कोई उपाय समझ में नहीं आ रहा था।

आखिर स्वामी जी ने दुःख भरी आवाज में मुझसे कहा - "क्या देखते हो? यदि मेरे घावों पर जल्दी ही पट्टी न बंधी तो मेरा जीवन समाप्त ही समझो।"

यह कह कर साधु मूर्च्छित हो गया। लेकिन वहाँ पट्टी बाँधने के लिए कपड़ा कहाँ था? साधु के पास तो केवल एक लंगोटी मात्र थी।

फिर मुझे अपनी चादर का ध्यान आया जिसे मैं घास बाँधने के लिए लाया था। उसी चादर में मेरे लिए चार रोटियाँ भी बंधी थीं। लेकिन खेद, कि वह चादर वहीं पेड़ पर लटकी हुई रह गई थी, जहाँ मैं पहली बार बैठा हुआ घास खोद रहा था। रीछ के डर से, मैं जल्दी ही साधु के साथ भाग आया था, और चादर उठाने का ध्यान न रहा।

मैं उस समय किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। वहाँ जाना भी संकट से खाली न था। इधर स्वामी जी की दशा बिगड़ती जा रही थी।

मैं सोचने लगा—'हे भगवान्! क्या करूँ? कैसे वहाँ जाकर चादर लाऊँ? अगर वहाँ रीछ हुआ तो........।'

फिर मैं साहस करके उसी स्थान से चादर लाने दौड़ा। वह स्थान लगभग आधा मील होगा। मेरी घबराहट का कौन अनुमान लगा सकता है ? मैं ही जान रहा था कि मुझ पर क्या बीत रही थी। 'निर्वाणदीपे किं तैल्यदानम्' अर्थात् तेल समाप्त होने पर दीपक बुझाने की बात भी ध्यान में थी, क्योंकि स्वामी जी मृत प्राय: ही थे।

जब मैंने वहाँ पहुँचकर देखा, तो चादर पेड़ पर लटकी हुई थी, परन्तु पास में ही मरा हुआ रीछ पड़ा था। उसे जंगली जान-वर खा रहे थे।

फिर मैंने चुपचाप चादर उतार ली। भयभीत और पसीना-पसीना, मैं अपनी जान पर खेलकर चादर ले आया। कभी आगे दौड़ता, तो कभी पीछे देखता। मुझे भय था, कि कहीं रीछ फिर मेरे पीछे न दौड़ रहा हो। काँपता और डरता चादर लेकर साधु के पास पहुँच गया।

भगवान ने मुझे उस समय न जाने कितना बल और साहस दिया था ! कोई नहीं कह सकता ! मैंने उसी चादर में से चार पट्टियाँ बनाईं और एक विशेष पेड़ के पत्ते लगाकर, कस कर बाँध दीं।

थोड़ी देर में खून बन्द हो गया। उस पेड़ के पत्ते घाव को जल्दी ही भरने वाले थे और उनमें अच्छा करने का गुण भी था। फिर मैंने दो रोटियाँ स्वामी जी को दीं; और दो मैंने खाईं। तत्पश्चात् कमल के पत्तों का दौना बना कर स्वामी जी को जल पिलाया।

अब स्वामी जी को कुछ चेतना हुई। उन्होंने कुछ स्वस्थ होकर मेरी ओर देखा और कहने लगा—'तुम कौन हो; और क्या काम करते हो ?'

मैंने बतलाया—'मैं एक पहाड़ी ब्राह्मण का लड़का हूँ और अपनी गाय के लिए घास खोदा करता हूँ। कभी-कभी लकड़ी भी काट कर बेचता हूँ; या मजदूरी करने चला जाता हूँ।'

फिर उन्होंने मेरा नाम पूछा। 'मुझे पंकज कहते हैं'—मैंने उत्तर दिया।

मुझे सम्बोधन करते हुए, स्वामी जी ने कहा—'पंकज ! तुम कब तक घास खोदते रहोगे ?'

'और क्या करूँ ?'

'तुम्हें पढ़ना चाहिए। तुम एक दिन बड़े आदमी बनोगे।'

'हमारे पास पढ़ाई के लिए कौड़ी भी नहीं है।'

'न सही, तुम्हारी ईश्वर सहायता करेगा।'

मैं बड़े ही ध्यान से स्वामी जी की भविष्यवाणी सुन रहा था। थोड़ी देर बाद, वह स्वामी जी वहाँ से उठकर जाने लगे। मैंने उनसे अपने गाँव में चलने को कहा, परन्तु उन्होंने बस्ती में जाना स्वीकार नहीं किया। मैंने उनके चरण छुये और बिदा ली। थोड़ी देर तक कुछ और घास खोदी, फिर चादर में बांध कर घर चला आया और घास गाय के आगे डाल दी। बढ़िया घास थी। गाय आनन्द से खाने लगी।

आज मुझे ऐसा मालूम हो रहा था, कि वह गाय, मेरी सेवा से बहुत प्रसन्न है। मैंने उसकी 'सानी' के लिए एक नांद गाढ़ने का विचार किया। जब मैं भूमि खोद कर स्थान बना रहा था तो मुझे दो अशर्फियाँ मिलीं। मैं उन्हें पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

मैंने अनुमान किया—या तो यह इस गाय की सेवा का फल है; या स्वामी जी की जीवन रक्षा का पुरस्कार है।

अब मुझे स्वामी जी के वे शब्द—'तुम एक दिन बड़े आदमी होगे' याद आने लगे। शाम को जब बापू मजदूरी करके आये, तो मैंने उनसे स्वामी जी की बातें बतलाईं। उन्हें सुनकर बापू बहुत ही प्रसन्न हुए। अगले दिन ही, उन्होंने मुझे पढ़ने बिठा दिया। मैंने वे दोनों गिन्नियाँ भी उन्हें दे दीं।

उसी दिन से मैं बड़े चाव से पढ़ाई में ध्यान देने लगा। मैं देखता था कि गाँव के बच्चे, बिना बुलाये पाठशाला में नहीं आते थे परन्तु मैं तो बिना बुलाये ही सबसे पहले वहाँ जा बैठता था। मेरी अन्तरात्मा भी मुझे, पढ़ने के लिए प्रेरित कर रही थी।

२

जिस कार्य में मनोयोग होता है, वह अवश्य पूरा होता है; और उसका फल भी सन्तोष जनक रहता है। इसलिए मैंने पढ़ने में इतने परिश्रम और रुचि से काम किया, कि एक वर्ष में मैंने दो कक्षाएँ पास कर लीं।

यदि विद्यार्थी मेधावी और परिश्रमी हो तो वह बहुत कुछ कर सकता है। विद्यार्थी के लिए समय पर पढ़ना और समय पर पाठशाला जाना परमावश्यक है—अर्थात् खेल और पढ़ाई का समय नियत होना चाहिये, क्योंकि नियम से ही संसार के सब काम होते हैं, बिना नियम कुछ नहीं।

मैं स्कूल में जो कुछ पढ़ता, उसे घर पर याद करता और आगे पढ़ाया जाने वाला पाठ, घर पढ़ कर जाता। फिर तो मेरे लिए पढ़ाई में कोई कठिनाई न रह जाती। मैं पढ़ाई के साथ साथ, अपने स्वास्थ्य और सदाचार का ध्यान भी बराबर रखता था।

सभी सहपाठियों से प्रेमभाव से बातें करना, समय पर उनकी सहायता करना और कभी किसी से लड़ाई-झगड़ा न करना,—मेरे विद्यार्थी जीवन का आदर्श था, जिसका मैं यथा-शक्ति पालन करता था।

मुझे चौथी कक्षा पास करने में, केवल दो वर्ष लगे। माता जी का देहान्त हो चुका था, और दो मास बाद दादी भी समाप्त हो गईं। अब मेरे सुख-दुःख से सुखी-दुखी होने वाले, केवल मेरे बापू थे, जिनकी वृद्धावस्था निकट थी।

इस समय, हमारा निर्वाह बड़ी कठिनाई से होता था, क्योंकि मैं अपना सारा समय पढ़ाई में ही लगा देता था। दूसरे बापू भी, अब अधिक काम नहीं कर सकते थे।

अतः कभी कभी तो एक समय ही भोजन मिलता था। कपड़े की तो बात ही क्या! जिस दिन बापू बीमार हो जाते, मुझे ही मजदूरी पर जाना पड़ता था। सच है—पेट किसी को सुख से नहीं बैठने देता। कहाँ वे धनवान, जो भोग विलास के लिए जीते हैं और कहाँ वे निर्धन जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक परिश्रम करने पर भी, दोनों समय पेट नहीं भर पाते! क्या इसे भगवान का पक्षपात कहें? विधि विडम्बना या दरिद्रों का दुर्भाग्य!

इन्हीं कठिनाइयों में रोते-झींकते, मैंने मिडिल पास किया। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने से, सरकारी छात्रवृत्ति की आशा थी, परन्तु काम चलना फिर भी कठिन था।

एक मास बाद ही बापू का सहारा भी उठ गया। गाँव में मिडिल से अधिक पढ़ाई नहीं थी। वही गाय और वे दो अशर्फियाँ मेरी बपौती थीं। अब मुझे अपनी जन्मभूमि भी

छोड़नी थी। अतः मैंने वह गाय तो अपने ताऊ को दे दी और वे दोनों अशर्फियाँ गाँठ में बाँधीं।

घर से बिदा लेकर और अपनी गाय को फिर एक बार देखकर, मैं नैनीताल जा पहुँचा। दो तीन रोज नौकरी की खोज की और वहाँ ५) भोजन पर, एक बाबू के यहाँ नौकरी मिल गई।

स्कूल खुलने पर एक स्थानीय हाई स्कूल में प्रविष्ट हो गया, और बाबूजी के घर रहकर उनकी नौकरी भी करने लगा।

वहाँ रहते हुए कभी पढ़ाई का समय मिलता था, कभी नहीं, क्योंकि दूसरे की नौकरी में प्राथमिकता उसी के काम को देनी पड़ती है। मेरा काम बाजार से शाक-सब्जी लाना और उनकी लड़की को स्कूल पहुँचाना तथा वापिस लाना था।

बाबू जी के यहाँ रह कर ही जैसे-तैसे करके मैंने हाईस्कूल पास किया, और भगवान की दया से प्रथम श्रेणी तथा बोर्ड में द्वितीय स्थान प्राप्त होने से १६) मासिक छात्रवृत्ति की पूर्ण आशा हो गई।

संसार में अपने पैरों पर खड़ा होने वालों को अनेक बाधाएँ और विषम परिस्थितियाँ आती हैं। मैं कौशिक बाबू के यहाँ ठीक तरह रह रहा था, परन्तु दुर्भाग्य से गर्मियों में ही, कौशिक बाबू की इलाहाबाद को बदली हो गई।

परिणाम यह हुआ कि मुझे भी उन्होंने कह दिया—'पंकज! अब हम यहाँ न रहेंगे। तुम भी कहीं दूसरी जगह अपना प्रबन्ध कर लो।'

ये शब्द मेरे हृदय में मर्म भेदी बाण के सदृश लगे, परन्तु ईश्वर की जैसी इच्छा होती है, वही मनुष्य को भी सहन करना पड़ता है। कौशिक बाबू का नैनीताल से इलाहाबाद जाना, मेरे लिए तो बहुत बुरा हुआ, परन्तु क्या करता?

फिर मैंने सोचा जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ, क्योंकि कौशिक बाबू और उनकी धर्म पत्नी का व्यवहार अच्छा नहीं था। हाँ! सरोज मुझसे अवश्य सहानुभूति रखती थी। मेरे दुःख से दुखी, और सुख से सुखी होती थी।

३

क्योंकि मुझे समय बिताना था, अस्तु कौशिक बाबू के यहाँ अपने स्वार्थ साधन के लिए अपमान का हलाहल पीते हुए भी, सहर्ष सब कुछ सहन किया।

सरकारी नौकर की नौकरी तो और भी बुरी होती है। मुझे अब ज्ञात हुआ कि ग़रीबी जीवन के लिए एक अभिशाप बनकर आती है और दासता उसे और भी कटु बना देती है।

कौशिक बाबू के यहाँ से नौकरी छूटने पर, मैं स्थानीय इण्टर कालिज में प्रविष्ट हो गया, और दो रुपये मासिक, किराये पर एक कोठरी लेकर उसी में रहने लगा।

मुझे अब १६) मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी थी। पन्द्रह दिन के बाद मुझे कालिज के प्रिंसिपल साहब ने २०) का एक ट्यूशन भी दिला दिया। अब मेरा काम ठीक चलने लगा।

यह अटल सत्य है कि संसार में जो व्यक्ति अपनी सहायता आप करता है और भगवान के भरोसे अपने पैरों पर खड़ा होता है, उसे परमात्मा भी सद्बुद्धि और सहायता देता है।

सरोज

१

मैंने, माता जी से पूछा—'पंकज हमारे साथ क्यों नहीं आया? क्या वह स्वयं वहीं रह गया? वह तो बहुत अच्छा था। क्या तुमने उसे नौकरी से छुड़ा दिया? माता जी! वह अपना निर्वाह अब कैसे करेगा?'

'तुझे क्या पड़ी ? कब तक वह हमारे साथ रहता ?'

नहीं माँ ! वह मुझे एक दिन बतला रहा था कि उसका कोई भी इस संसार में नहीं है। वह असहाय और अकेला है। उसके सभी घर वाले मर चुके हैं। क्या तुम्हें उसका कुछ पता है ? मेरी अच्छी अम्मा ! बतलाती क्यों नहीं ? उसने क्या अपराध किया था, जो तुमने वहीं छोड़ दिया ?

जब मैंने पंकज के सम्बन्ध में इस प्रकार अनेक प्रश्न पूछे तो वह मुझे समझाती हुई बोलीं—'बेटी ! वह अब बड़ा हो गया था। अब हम उसे अपने घर में नहीं रख सकते थे। वह स्कूल में जो पढ़ता था, तो हमारा काम बहुत कम समय करता था।

तुम जानती हो, हमें ऐसे नौकर की आवश्यकता है, जो हर समय, हमारा काम कर सके, और जिसे कोई और दूसरा काम न हो। बस इसीलिए हमने उसे जवाब दे दिया; और वहीं पर छोड़ आये। अब न जाने वह कहाँ रहा होगा ?

कहीं भी रह लेगा। वह बिल्कुल बच्चा तो है नहीं। तू उसके लिए व्यर्थ क्यों चिन्तित है ? हम कहाँ तक उसको निभा सकते थे ? आखिर एक दिन छोड़ना ही पड़ता। संसार में ईश्वर सब की सुध लेता है।

माता जी यह कहकर चुप हो गईं। परन्तु मुझे पंकज की सेवाएँ याद आने लगीं। वह मुझे पढ़ने में सहायता देता था और मेरे किसी भी काम को मना नहीं करता था। मुझे स्कूल पहुँचा आता और फिर वापस लाता। कैसा विनीत और आज्ञाकारी था वह !

संसार भी विचित्र है। इसमें सब अपने ही स्वार्थ को रोते हैं। मानव, मानव का हित नहीं चाहता। बाबू जी तथा माता जी

का क्या बिगड़ जाता ? यदि उसे भी साथ ले आते। बेचारा वह भी अपने ही भाग्य का खाता। वेतन भी कोई बड़ा भारी नहीं लेता था, केवल ५) रुपये।

सच है—गरीब तो संसार में दर दर भटकने के लिए ही आते हैं और धनी उनके दुर्भाग्य पूर्ण जीवन से खिलवाड़ करने के हेतु ! मेरा क्या वश था ? मैं उस गरीब के लिए, दया और सहानुभूति रखती हुई भी माता-पिता से अलग क्या कर सकती थी ?

२

जिस दिन से पंकज अलग हुआ था, मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। इलाहाबाद आने पर हमें नौकर मिलना कठिन हो गया। जिससे भी बातें करते २०)-२५) माँगता। बाबू जी इतना देना नहीं चाहते थे। कृपण, धन के लिए अपनी सुविधा का भी बलिदान कर सकता है, इसका मुझे पहली बार ही अनुभव हुआ।

जब तक नौकर नहीं मिला घर का सब काम हाथ से ही करना पड़ता था। बाजार से शाक सबजी, कभी मैं लाती और कभी बाबू जी, क्योंकि माता जी प्रायः बीमार रहती थीं।

भोजन भी प्रायः मैं ही बनाती थी, क्योंकि मैं भोजन बनाना गृहस्थ का एक मुख्य कर्त्तव्य समझती थी।

मेरा विचार था कि सभी लड़कियों को अपने घर गृहस्थ के सभी कामों में दक्ष होना चाहिए। नहीं तो, विवाह के पश्चात उन्हें काम की आदत न होने से, कभी कभी बड़ी भारी कठिनाई उठानी पड़ती है।

पंकज की सहायता करने का मेरा अधिक विचार था, उसके काम का इतना अधिक स्वार्थ नहीं था

जिस कालिज में मैं पढ़ती थी वह केवल इंटर तक था। वहाँ से मैं ने इंटर साइंस की परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई।

तत्पश्चात् बी० एस० सी० की पढ़ाई करने के विचार से मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गई। दो वर्ष तक, मैंने परिश्रमपूर्वक अध्ययन किया और बी० एस० सी० की परीक्षा में बैठी। अब केवल परीक्षा फल की प्रतीक्षा थी। धीरे-धीरे एक महीने का समय व्यतीत हो गया।

तदनन्तर २५ मई के 'लीडर' में सूचना निकली, कि परीक्षा-फल एक जून को निकलेगा। हमारे घर पर 'लीडर' आता था। मैं अत्यन्त उत्सुकता और जिज्ञासा से एक जून की प्रतीक्षा करने लगी।

माता जी स्वस्थ थीं। घर का सब काम अब एक पहाड़ी नौकर ही करता था। इसलिए मुझे पढ़ने का पर्याप्त समय मिलता गया। पंकज कहाँ था और क्या करता था? मुझे किंचित भी ज्ञात नहीं था। नैनीताल से आने पर अब तक उसका कोई भी पत्र या समाचार हमें प्राप्त नहीं हुआ था।

एक सप्ताह व्यतीत होने पर एक जून भी आ गई। प्रातःकाल के भ्रमण से आते ही, मैंने माता जी से पूछा—क्या 'लीडर' आ गया है? बैठक में होगा—माता जी ने कहा।

मैं तत्काल बैठक में गई। मैंने बड़ी भारी उत्सुकता के साथ समाचार पत्र हाथ में लिया और अत्यन्त सचेत होकर प्रथम पृष्ठ देखने लगी। एक दृष्टि में ही समस्त पृष्ठ देख लिया। फिर तुरन्त ही यह सूचना मिली कि अमुक पृष्ठ पर इलाहाबाद यूनीवर्सिटी का बी० एस० सी० का परीक्षाफल है।

एक दम ही परीक्षाफल का पृष्ठ निकाल लिया। मुझे पूर्ण विश्वास था कि मेरी प्रथम श्रेणी अवश्य आयेगी, प्रथम स्थान चाहे न आये।

मैंने सर्व प्रथम विह्वल होकर प्रथम श्रेणी का परीक्षाफल देखा। परीक्षार्थियों के नाम दिये हुए थे। मैंने सबसे ऊपर 'पंकज जोशी' और उसके नीचे 'सरोज कौशिक' छपा देखा।

मेरे आश्चर्य और हर्ष की कोई सीमा न थी। मैंने कई बार परीक्षाफल देखा और दोनों नाम पढ़े परन्तु सब कुछ वही, पूर्ववत् था।

'पंकज' का नाम सबसे ऊपर देखते ही मेरे अङ्ग अङ्ग में बिजली सी दौड़ गई। सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो गया। नेत्रों में आनन्दाश्रु-छलक आये। हृदय में आनन्द की एक अपूर्व लहर दौड़ गई।

साथ साथ, यह विचार भी आया—क्या वही पंकज! या कोई और! फिर ध्यान आया वह पंकज भी होनहार था वह भी हाई स्कूल में प्रथम श्रेणी में ही पास हुआ था। क्या आश्चर्य? जो वही ंकज बी० एस० सी० में भी प्रथम आया हो?

मैं उससे मिलने के लिए आतुर हो उठी। लेकिन इतनी बड़ी यूनीवर्सिटी में पता लगाना भी सरल न था और फिर एक लड़की का किसी लड़के के सम्बन्ध में कुछ भी पूछना, सन्देह जनक ही नहीं, अशिष्टतापूर्ण भी था।

इसके अतिरिक्त, मैं ऐसा कर भी नहीं सकती थी। लेकिन यह तो सम्भावित था, कि वह प्रयाग में ही होगा। परन्तु कैसे पता लगाती? फिर समय पर ही यह बात छोड़ दी।

३

ग्रीष्मावकाश समाप्त हो गया और यूनीवर्सिटी खुल गई। मेरे पिता जी की बनारस को बदली हो गई थी, लेकिन वह मुझे इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में ही पढ़ाना चाहते थे और अंग्रेजी में एम० ए० कराने का विचार था।

मैंने एम० ए० में प्रवेश कर लिया और लड़कियों के छात्रावास में रहने लगी। पिता जी और माता जी बनारस चले गये।

१४ जुलाई को लेक्चर आरम्भ होने वाले थे। मेरी कक्षा में दस लड़के और दो लड़कियाँ थीं। जब पहले दिन की उपस्थिति हुई, तो मैंने पंकज जोशी का नाम सुना।

ज्योंही पंकज जोशी शब्द की मधुर-ध्वनि मेरे कानों में पड़ी, मैं चौंक उठी। उस समय दूसरे नम्बर पर अपना नाम आते ही अपने को संभालकर, गम्भीरतापूर्वक 'उपस्थित श्रीमान्' कहा।

उपस्थिति के उपरान्त प्रोफेसर साहब ने पंकज को सम्बोधन करते हुए पूछा—"क्या तुम्हीं 'पंकज जोशी' हो, जो इस वर्ष हमारी यूनीवर्सिटी से, बी० एस० सी० में फर्स्टपोजीशन लाये हो?" पंकज ने उठकर 'यस सर' कहा।

फिर मेरी ओर संकेत करके कहा—"क्या तुम्हीं 'सरोज कौशिक' हो—जो सेकिंड आई हो।" मैंने भी सिर नीचा करके 'यस सर' कहा।

फिर तो मैंने पंकज को भली भाँति पहचान लिया और सम्भव है पंकज ने भी मुझे पहचाना हो। लेकिन मैंने उसी समय और वहीं परिचय के लिए कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। केवल यही समझ कर—'दर्शन की प्यासी आँखें—देखेंगी नित्य उनको।' अतः मैंने निश्चय किया कि अपरिचित ही रहना ठीक है।

रोजाना कक्षा होती। हम दोनों आते, और परिचित होकर अपरिचित-से चले जाते। परस्पर बात चीत का भी कुछ काम नहीं था, क्योंकि मेरा बहुत ही संकोची स्वभाव था। हम दोनों एक दूसरे को जानते और पहचानते थे, परन्तु फिर भी अनजान और एक दूसरे से दूर थे।

मैं जानती थी कि पंकज बहुत ही गम्भीर और विचार शील है। इसके अतिरिक्त वह हमारे घर, सेवक रूप से भी रह चुका था। अब वह अपने काम से काम रखता था। मैं भी यही चाहती थी।

पंकज

१

समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। दो वर्ष का समय जाते ही इंटर की परीक्षा आ गई। परीक्षा के दिन, विद्यार्थी पर एक बुरे ग्रह के समान आते हैं।

जब परीक्षा सकुशल और भली भाँति समाप्त हो जाती है, तब कहीं उस परीक्षा-रूपी संकट-काल का ग्रह टलता है।

मैंने प्रथम श्रेणी और प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए दिन रात एक कर दिया। 'सच्चा परिश्रम सफल होता है' की उक्ति मेरे विषय में चरितार्थ हुई। सच है—'लगन' विश्वास और साहस सफलता का आधार हैं।' जब परीक्षा फल निकला तो इंटर में मुझे प्रथम और सरोज को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ।

मैंने मन में समझ लिया, कि यह वही सरोज होगी, परन्तु मुझे उसका पता नहीं ज्ञात था। सरोज मुझे बधाई क्यों देती? कहाँ दरिद्रता और कहाँ अमीरी! इन दोनों का क्या सम्बन्ध!

फिर मैंने बी० एस० सी० की पढ़ाई के लिए इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में प्रवेश कर लेने का विचार किया। २५) मासिक

की छात्र वृत्ति मुझे मिलती ही थी। मैंने सोचा यदि एक भी ट्यूशन मिल गया, तो काम चल जाएगा। अब तो "सब दिन रहत न एक समाना" वाली बात थी। प्रयाग जाने से पूर्व मेरे पास सेविंग-बैंक में २००) जमा हो गए थे। इसी भरोसे पर, मेरा विचार इलाहाबाद जाने का हुआ था।

फिर क्या था, यूनीवर्सिटी खुलते ही प्रयाग पहुँच गया और एक धर्मशाला में जा ठहरा। वे दोनों अशर्फियाँ मेरे पास थीं हमारे घर की वह गाय मर चुकी थी, और दो मास बाद, वह गाँव भी गंगा की बाढ़ में बह चुका था। जन्म भूमि की स्मृति जब कभी आती मेरा हृदय रोने लगता, परन्तु फिर अपने मन को समझाता और जीवन को आगे बढ़ाने के लिए चित्त को दृढ़ करता।

मैंने एक रात्रि तो, धर्मशाला में व्यतीत की। प्रातः काल होते ही त्रिवेणी पर स्नान करने गया। जिस घाट पर मैं नहा रहा था, वहीं पास में, एक सन्यासी भी स्नान करता था।

उसने कई बार मेरी ओर देखा। फिर मैंने भी उस पर दृष्टि डाली। मैंने देखा कि उसके मस्तक पर एक भारी चोट का निशान है। वह मुझे परिचित सा मालूम पड़ा लेकिन मैं उसे अच्छी तरह न पहचान सका। परन्तु मुझे सन्देह तो हो गया कि सम्भवतः यह वही साधु तो नहीं है, जिसके मैंने पट्टियाँ बाँधी थीं

मैं मन में सोच ही रहा था कि वह साधु स्नान करके मेरे निकट आ गया और मेरी ओर गौर से देखने लगा। थोड़ी देर बाद ही मुझे देख-भाल कर उसने मेरा नाम पूछा। मैंने उत्तर दिया 'स्वामीजी ! मेरा नाम पंकज है।'

पंकज नाम सुनते ही वह साधु मुझे गले से लिपटाते हुए बोला—'बहुत दिन में मिले हो। क्या मुझे पहचानते हो ? यहाँ कहाँ ठहरे हुए हो ?'

फिर तो मैंने स्वामी जी को पहचान लिया। उस समय मेरे आनन्द की सीमा न रही।

मैंने स्वामी जी को बतलाया—'कल ही नैनीताल से यहाँ आया हूँ और एक धर्मशाला में ठहरा हुआ हूँ। मेरा विचार यहाँ के विश्वविद्यालय में पढ़ने का है।'

मेरा परिचय प्राप्त करके स्वामी जी गद्‌गद् हो गये। वह अपने वैराग्य को भूलकर एक विचित्र मोह जाल में पड़ गए। ऐसा मैंने उनकी उस समय की अवस्था देखकर अनुभव किया।

फिर क्या था। पुरानी स्मृति सजग हो गई। स्वामी जी का अङ्ग-अङ्ग पुलकित था, और मुझे भी अपार हर्ष हुआ।

तत्पश्चात् स्वामी जी मुझे अपने आश्रम में ले गए, जो वहाँ से थोड़ी ही दूर था। वह मुझसे पूछने लगे—"पंकज ! यदि तुम्हारा विचार यहाँ ठहरने का हो, तो यहाँ रह सकते हो। यहाँ तुम्हारे लिए सब प्रकार का समुचित प्रबन्ध हो सकेगा। संकोच न करो पंकज ! मैं जानता हूँ—तुमने मेरे प्राण बचाये हैं। मैं तुम्हारे उपकार से आजीवन भी उऋण नहीं हो सकता। तुम मेरी आपत्ति में काम आये हो। तुमने मेरे लिए अपने जीवन की बाजी लगा दी थी। मैं तुम्हारी भलाई का ऋण चुका ही नहीं सकता।"

मैं नतमस्तक स्वामी जी की बातें सुन रहा था। अन्त में मैंने कहा—स्वामी जी ! मैं किस योग्य हूँ। मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया है। आप मुझे अब अधिक लज्जित न करें। मनुष्य का कर्त्तव्य मनुष्य की जीवन-रक्षा, समयानुसार सेवा करना है। मानव, मानव की सहायता के लिए है।

स्वामी जी का आग्रह मुझ से टाला न गया। उन्होंने मेरे साथ, मेरा सामान लाने के लिए अपना एक नौकर भेज ही दिया।

सच बात तो यह थी, कि मुझे भी उपयुक्त स्थान और किसी सज्जन का आश्रम चाहिए था। मैं आश्रम में ही आ गया।

सच है, जीवन में किया हुआ उपकार निष्फल नहीं जाता। कभी का पुण्य कभी काम आता है। "अवश्यं भोक्तव्यं कृताकृत शुभाशुभम्" "अर्थात् किया हुआ शुभ अशुभ काम का फल अवश्य भोगना पड़ता है"। मैं जानता था कि स्वामी जी की भविष्यवाणी मेरे लिए एक अपूर्व वरदान थी, क्योंकि वह सन्यासी परम तेजस्वी, जितेन्द्रिय और निष्काम योगी था। मैं उस समय साधु वचन की अवज्ञा नहीं कर सकता था। फिर उस आश्रम-जैसा-शान्त, रमणीक और एकान्त स्थान, मुझे कहाँ मिल सकता था? स्वामी जी का संरक्षण भी मेरे लिए एक दूसरा वरदान था।

जहाँ, जब, जैसा होना होता है, उसे कोई नहीं टाल सकता। दवयोग से स्वामी जी से भेंट होने से, मेरी बहुत सी समस्याएँ हल हो गई। हृदय की शान्ति एवं आश्वासन मिला।

विश्वविद्यालय खुलते ही मैंने बी. एस. सी. में प्रवेश करा लिया और परिश्रम पूर्वक पढ़ाई करता रहा। परन्तु अभी तक मुझे सरोज का कोई पता नहीं चला। जब बी. एस. सी. का परिणाम निकला तभी मुझे ज्ञात हुआ कि सरोज को मेरे बाद दूसरा स्थान प्राप्त हुआ है। स्वामी जी के परिचय से कई बड़े आदमियों के यहाँ मुझे ट्यूशन भी मिलते रहे, जिसके कारण अध्ययन निर्बाध चलता रहा।

बी. एस. सी. का परिणाम सुनते ही, मैं गर्मियों का अवकाश व्यतीत करने नैनीताल चला गया। वहाँ अपने एक साथी के यहाँ जा ठहरा। वह भी मेरे साथ इलाहाबाद ही पढ़ता था, और नैनीताल का रहने वाला था।

ग्रीष्मावकाश व्यतीत करके, मैं पुनः इलाहाबाद लौट आया। यूनीवर्सिटी खुलने पर, मैंने एम. ए में प्रवेश करा लिया और अंग्रेजी का विषय लिया। उपस्थिति के प्रथम दिन ही, 'सरोज कौशिक' का नाम सुन कर मुझे अपूर्व प्रसन्नता हुई।

वह भी मुझे देख कर पुलकित हो गई होगी परन्तु मैंने किसी को भी यह प्रकट न होने दिया कि वह मेरी परिचित है। दूसरे मैं उसके यहाँ सेवक रूप में भी रहा था। मेरा उसका क्या परिचय ? कहाँ वह एक डिप्टी की एक मात्र लाडली लड़की; और कहाँ मैं अनाथ और निर्धन, कभी उसका नौकर !

परिचय हो या मित्रता, लेन-देन हो या विवाह-सम्बन्ध, समानावस्था में ही ठीक रहता है। यहाँ तो "कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा" वाली बात थी। कहाँ सम्राट कन्या सावित्री ! और कहाँ लकड़ी काटने वाला और बनवासी निर्धन सत्यवान ! मेरी हीनावस्था और लघुत्त्वभावना ने परिचय न बढ़ने दिया।

मैं उसको देखता था और सरोज मुझे। परन्तु हम सहपाठी होते हुए भी बहुत दूर थे। मैंने कभी सरोज से यह भी नहीं पूछा, 'कि तुम कहाँ रहती हो ?' हाँ ! उसके माता-पिता की कुशलता एक दो बार अवश्य पूछी थी, क्योंकि मैंने तीन वर्ष, उनके घर व्यतीत किए थे।

अब मुझे सब प्रकार की सुविधा थी। साइकिल मैंने बी. एस सी. में ही खरीद ली थी। मैंने अपनी आवश्यकताओं को पहले से ही बहुत कम रखा था।

'भाग्यं फलति सर्वत्र' तो ठीक है ही परंतु मैं पुरुषार्थ और अनुकूल परिस्थिति को भी अपनी उन्नति के साधन मानता था।

मेरी भावी आशाओं की नींवँ तो बन चुकी थी, अब केवल मेरे जीवन का भव्य-भवन बनना था। न जाने, इसमें कितनी देर थी ? आने वाला समय ही बतला सकता था।

सरोज

लगभग चार महीने से, मेरा काशी जाना नहीं हुआ था। पिता के कई पत्र आये, परन्तु कार्यवश जाना नहीं हो सका। कर्त्तव्य की पुकार माता-पिता के मोह से अधिक बलवती थी।

मैंने एम. ए. में भी, प्रथम श्रेणी ही लाने का विचार किया था, अतः अध्ययन में तन्मय रहना ही मेरा व्यसन था। व्यर्थ कहीं जाना, और घूमना मुझे अच्छा नहीं लगता था।

रविवार को त्रिवेणी पर स्नान करने अवश्य जाती थी। पंकज से भी कक्षा में ही मिलना होता था। मैं आधुनिक शिक्षा प्राप्त करती हुई भी, केवल उसमें से फूल ही चुनती जा रही थी और मुझे काँटों के प्रति मरण एवं उदासीनता थी। वर्त्तमान शिक्षा का जो रूप लड़कियों के लिए दूषित समझा जाता है, वह मुझे कदापि प्रभावित नहीं कर सकता था।

मेरे विचार में पंकज भी आदर्श चरित्र रखता था। उसका नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था। सच तो यह है, कि जिस विद्यार्थी ने विद्या को ही अपना व्यसन बना लिया हो, वही दूषित वातावरण से सुरक्षित रह सकता है।

कीचड़ बलात् किसी को अपनी ओर नहीं खींचती, वरन् विषय विशेष लोलुप व्यक्ति स्वयं ही उसमें जा फँसते हैं। विद्या तो धर्म की तरह रक्षक है, तक्षक-समान भक्षक नहीं। जो विपरीत सोचते हैं, उनमें सद्बुद्धि का अभाव ही समझो।

दुर्गापूजा के अवकाश में, जब मेरा बनारस जाना हुआ, तो मेरे माता-पिता मुझे देखकर बड़े खुश हुए। दूसरे, मेरे आचरण व्यवहार और शिक्षोन्नति से उन्हें पूर्ण सन्तोष था।

वास्तव में, वे माता-पिता धन्य हैं, जिनकी सन्तान स्वस्थ, सदाचारी और विद्या व्यसनी है, क्योंकि विद्या-व्यसन बालक बालिकाओं को अनेक दुर्व्यसनों से बचाये रखता है।

एक मात्र सन्तान होने के कारण वे मुझे ही अपना सब कुछ समझते थे। अब माता जी का वह लड़ने-झगड़ने का स्वभाव भी नहीं रहा था। समयानुसार मानव के स्वभाव में भी परिवर्तन हो जाता है। अब माता जी का स्वभाव भी नरम पड़ गया था। लगभग बीस दिन रहकर मुझे यह भी ज्ञात हो गया कि मेरे माता-पिता को अब मेरे विवाह की भी चिन्ता थी। मुझे मालूम हुआ कि वे कई जगह से बातचीत कर रहे थे। मेरे विचार भी जानने का प्रयत्न किया गया, परन्तु मैंने विनीत भाव से निवेदन किया, 'कि जब तक एम० ए० की पढ़ाई समाप्त न हो जाय, तब तक ठहरा जाय'। यह सुनकर फिर उन्होंने इस विषय की चर्चा ही नहीं चलाई। अवकाश समाप्त होने पर, मैं इलाहाबाद लौट आई।

एम० ए० का प्रथम वर्ष बड़ी कठिनाई से बीता, क्योंकि माता जी प्रायः बीमार रहने लगीं, और उन्हें देखने के लिए बार बार काशी जाना पड़ता था।

वार्षिक परीक्षा आरम्भ हुई और अच्छी तरह समाप्त हो गई। परिणाम भी अभीष्ट ही निकला। फिर दूसरा वर्ष आरम्भ हो गया; और पढ़ाई यथावत् चलती रही।

पंकज का स्वभाव और उसकी योग्यता प्रशंसा के योग्य थी। उसका गौरवर्ण और सुन्दर व्यक्तित्व, भव्य तथा मनोहर था। कक्षा के सभी सहपाठी, उसे आदर की दृष्टि से देखते थे और

प्रोफेसर भी उसे होनहार समझते थे। मुझे आश्चर्य था कि वह अन्य लड़कों से इतना भिन्न कैसे था! उसी सादी-वेश-भूषा, मधुर प्रकृति, सौम्य स्वभाव सभी सहपाठियों के लिए प्रशंसा के विषय थे।

'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपातः' अर्थात् सुन्दर व्यक्तियों के साथ सभी पक्षपात करते हैं की उक्ति पंकज के सम्बन्ध में बिल्कुल ठीक थी।

वास्तव में गुणी तो वही है, जो स्वयं आत्म प्रशंसा न करे, अपितु दूसरे ही उसे अच्छा कहें। ऐसी ही बात पंकज के सम्बन्ध में भी थी। वस्तुतः उसका पंकज नाम सार्थक ही था। 'गूदड़ छिपा लाल' की उक्ति उस पर पूरी तरह चरितार्थ होती थी।

मुझे अश्चर्य था कि पंकज के जीवन में उसके कार्यकलाप को कौन सी ऐसी अज्ञात शक्ति संचालित कर रही थी, जिसका फल आशातीत रूप से मधुर था। इसका कारण मुझे उस दिन ज्ञात हुआ, जब मैं एक दिन त्रिवेणी पर स्नान करने गई थी और पंकज भी मुझे वहीं मिला।

मैंने उससे पूछा—'तुम कहाँ रहते हो?'

'स्वामी ज्ञानानन्द जी के आश्रम में।'

'वह तो मेरे पिता के गुरु हैं और प्रायः हमारे घर आया करते हैं।'

'क्या तुम उन्हें जानती हो?'

हाँ! मैं उनसे भली भाँति परिचित हूँ। चलो, मैं भी उनके आश्रम को देखना चाहती हूँ। तत्पश्चात् हम दोनों स्वामी जी के आश्रम में पहुँच गए। मैंने पंकज के पढ़ने का स्थान देखा। एक तख्त पड़ा था, उस पर एक चटाई बिछी थी। अलमारी में कुछ पुस्तकें लगी थीं। स्थान साफ़-सुथरा था।

थोड़ी देर बाद मैंने स्वामी जी के दर्शन किये। उन्होंने मुझे पहचान कर कहा—"क्या तुम कौशिक बाबू की लड़की-सरोज हो? तुम यहाँ क्या करती हो? यहाँ कैसे आई?"

'मैं त्रिवेणी पर स्नान करने आई थी। पंकज भी मुझे स्नान करता हुआ, वहीं मिल गया। हम दोनों एक ही कक्षा में पढ़ते हैं।'

स्वामी जी यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और फिर बनारस में, मेरे माता-पिता के बारे में कुशल समाचार पूछने लगे। मैंने कहा 'मैं दुर्गापूजा पर घर गई थी। वे सकुशल हैं। कल ही उनका एक पत्र आया है।'

तत्पश्चात् मैंने स्वामी जी से जाने के लिए विदा माँगी। पंकज भी मेरे पास ही खड़ा था। जब मैं जाने लगी, स्वामी जी हमें देखकर मुस्कराते हुए बोले 'जोड़ी तो अच्छी है।' पंकज चाहे न समझा हो, लेकिन मैं तुरन्त ही स्वामी जी का आशय समझ गई और उन्हें प्रणाम करके छात्रावास में लौट आई।

२

मेरी कक्षा में एक दूसरी लड़की भी थी जिसका नाम कुसुम था। वह अत्यन्त सुन्दर ही नहीं, अपितु आकर्षक भी थी। वह सदैव मेरी सादी वेष-भूषा की हँसी उड़ाती, परन्तु मैं चुप हो जाती। मैं उस रूप-गर्विता से लड़ना व्यर्थ समझती थी और प्रायः उदासीन ही रहती।

फिर भी मेरे लिए यह स्वाभाविक था, कि कभी कभी उससे बातें करती। "खग जाने, खग ही की भाषा" के अनुसार मैंने उसकी पंकज विषयक बातों से यह समझ लिया था, कि वह पंकज को नहीं चाहती थी और उसके सादेपन को उसकी मूर्खता और गँवारपन कहती थी।

लेकिन हीरे का असली मूल्य जौहरी के अतिरिक्त कौन जानता है ? बाहरी चमक-दमक सब देखते हैं। मुझे कुसुम की बातों से ज्ञात हुआ कि वह पहले से ही नन्दलाल को चाहती थी, जो हमारी कक्षा में ही पढ़ता था।

एक दिन कुसुम ने कक्षा भर को चायपार्टी पर बुलाया। मैं भी गई और पंकज भी आया। पार्टी समाप्त होने पर नन्दलाल बधाई देने को खड़ा हुआ और कहने लगा — 'आज की पार्टी चाहे जिस उपलब्ध्य से भी हुई हो, उसी के लिए हम सबकी शुभ कामनाएँ हैं। मिस-कुसुम ने हमें आज एक साथ मिल बैठने का जो सुअवसर दिया है, उसके लिए हम सब उनके कृतज्ञ और आभारी हैं।"

तदनन्तर सब अपने अपने स्थान पर चले गए। कुसुम का यह आडम्बर मुझे अच्छा न लगा। मैंने स्पष्ट समझ लिया कि कुसुम के मनोभाव किस दिशा में हैं ? फिर भी मुझे अपने काम से काम था। दुनिया क्या करती है ? क्या प्रयोजन ? अपना ही व्यसन ठीक है।

समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। एम० ए० की उत्तरार्द्ध (फाइनल) परीक्षा आ गई। तैयारी अच्छी थी। परीक्षा के प्रश्न पत्र अच्छी तरह किए। यह परीक्षा फल मेरे जीवन की कसौटी था। परमात्मा सब की सुनता है। मेरा परीक्षा फल पूर्ववत् ही रहा। पंकज जोशी का प्रथम स्थान और मेरा द्वितीय था। ऐसा मालूम होता था, कि नियति को हमारी सफलता क्रमशः इसी भाँति इष्ट थी।

गर्मियों में ही विवाह की चर्चा चलने लगी। मैंने कभी भी अपने माता पिता के सामने पंकज के सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही थी। लेकिन वे सब बातें जानते थे। त्रिवेणी पर रहने वाले

ज्ञानानन्द स्वामी का हमारे घर आना जाना था। पंकज के सम्बन्ध में, स्वामी जी ने माँ और पिता जी से सब कुछ बतला रक्खा था। मुझे ये सब बातें घर के नौकर से मालूम हो गई थीं।

ग्रीष्मावकाश समाप्त हुआ। मैं तो हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के स्त्री-कालिज में २५०) पर अंग्रेजी की प्रोफेसर होगई। कुसुम के पत्र से मालूम हुआ कि पंकज जोशी इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में अंग्रेजी के प्रोफेसर हो गए हैं। कुसुम का विवाह नन्दलाल से हो चुका था। "जाका जापर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू" की उक्ति में, अब तो मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था।

दुर्गा पूजा के अवसर पर मेरी सगाई हो गई, और सात फरवरी का विवाह निश्चित हो गया। पंकज जोशी मुझे जानते थे और मैं उनको। निश्चित तिथि को विवाह संस्कार सम्पादन हुआ। स्वामी जी और मेरे माता-पिता के हर्ष का ठिकाना न था। भावना के अनुकूल हमारी साध पूरी हुई। पंकज जोशी मेरे मनोनीत पति बने। स्वामी जी के उस दिन वाले शब्द—'कैसी सुन्दर जोड़ी है' आज मुझे सार्थक प्रतीत हुए। मेरे पति ने मुझे दो अशर्फियाँ भेंट कीं, जो उनके पास न जाने कब से थीं।

पंकज—सरोज

हमारा आदर्श विद्यार्थी जीवन सुखद गृहस्थाश्रम की आधार शिला बनकर, जीवन के भव्य भवन का भार संभालने में सार्थक हुआ।

यद्यपि प्रयाग और कासी अलग अलग थे, परन्तु फिर भी एक। हमारा गृहस्थ जीवन विश्वास, त्याग, ब्रह्मचर्य, सहनशीलता उदारता और प्रेम भाव का सहारा लेकर सुखपूर्वक चलता रहा।

हमारा जीवन वर्त्तमान काल के रूप, धन तथा काम लोलुप, विवाहित युवक-युवती के समान कृत्रिम और नीरस नहीं था।

हमारे जीवन का कल्पवृक्ष सभी अभीष्ट कामनाएँ पूरी करने वाला था। हमारे जीवन में, भावना से कर्त्तव्य ऊँचा था। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही हमारी जीवन-यात्रा चलती रही।

पाँच वर्ष के पश्चात्, हमें एक ही स्थान पर क्रमशः स्त्री कालिज की प्रिंसिपल तथा विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

विवाह के उपरान्त हम दोनों दो शरीर एक आत्मा थे। संयम एवं सदाचार हमारे स्वस्थ्य एवं सदाचार के रक्षक थे। हमारे गृहस्थ में बाह्याडम्बर तथा मनोमालिन्य लेशमात्र भी नहीं था। हर एक काम में सादगी थी।

अपना अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए, हम दोनों जीवन नवका की चिरनवीन पतवार थे। परमात्मा हमारा कर्णधार था। संसार पारावार था। कभी हम मध्यम धारा में होते और कभी तट पर। हमें उन्नति का चाव था और सुखी जीवन की उत्कट कामना।

इस प्रकार इस संसार-सरोवर के दो सजीव प्राणी—पंकज-स्वरूप-सरोज अथवा जोशी स्वरूप कौशिक, मर्यादानुकूल गृहस्थ का भोग करते हुए सुखी, प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर थे।

एक का दुःख दूसरी का दुःख था। दूसरी का सुख पहले का सुख था। भिन्न होते हुए भी अभिन्न थे। भगवती सरस्वती हमारी आराध्य देवी थी और लक्ष्मी हमारी जीवन-ज्योति।

विश्वास और श्रद्धा हमारे जीवन के सम्बल थे। लोक से परलोक हमारा गन्तव्य स्थान था।

स्वामी जी के आशीर्वाद और भविष्य वाणी का यह सफल सामंजस्य अति प्रिय एवं सुन्दर था। कौशिक दम्पति इस असार संसार से चलकर बैकुण्ठ वासी हो चुके थे। स्वामी ज्ञानानन्द का आशीर्वाद, सत्परामर्श, वरदस्त एवं मंगलमय दर्शन अभी तक प्राप्त था।

जीवन यात्रा के हम दोनों पथिक अपने मार्ग पर चले जा रहे थे। कोई हमें देखकर सुख अनुभव करता, कोई हँसता, कोई प्रशंसा करता और कोई निन्दा भी। सच है—"जड़ चेतन, गुण दोष मय विश्व कीन्ह करतार।"

अब हमने जाना—सच्चा प्रेम एक कल्प वृक्ष है जो एक न एक दिन, इष्ट फल दिये बिना नहीं रह सकता। जिन्हें उन्नति का शौक है, वास्तव में वे ही मानव कहलाने के अधिकारी हैं और वे ही मानव नाम को सार्थक करते हैं।

कुछ वर्ष व्यतीत होने पर हमें दो सन्तान, एक साथ ही प्राप्त हुईं, जिनमें एक पुत्र और एक कन्या थी। पुत्र पिता का सौंदर्य था और कन्या माता की छाया थी।

दोनों की शिक्षा-दीक्षा, हमारा कर्त्तव्य था। उनके स्वास्थ्य का ध्यान, हम दोनों ही समान रूप से रखते थे। वे भी आज्ञाकारी विनीत और विद्या व्यसनी थे हम भी जीवन यापन कर रहे थे और वे भी जीवन-पथ पर, नवीनतम् उत्साह, रुचि, एवं साहस के साथ बढ़े चले जा रहे थे। जो हमारे जीवन का लक्ष्य था, वही हमने उनके जीवन का ध्येय बनाने का प्रयास किया। हमारे समान, वे भी सफल होंगे, ऐसा हमारा विश्वास था।

: ६ :

परिवर्तन

१

कमला और आनन्दी दोनों अंतरङ्ग सखियाँ थीं। दोनों में परस्पर प्रगाढ़ प्रेम और सहानुभूति थी। यद्यपि दोनों सजातीय और समानावस्था की थीं, परन्तु दोनों के विचार स्वतंत्र थे। आदर्श भी पृथक थे, परन्तु फिर भी मैत्री में कुछ अंतर न था, और होना भी नहीं चाहिए था।

कमला, कमल के समान अवदात, कांतिमयी, चंचल और कुछ कुछ श्याम वर्ण थी। आनन्दी, गौरवर्ण, चन्द्रमुखी तथा गम्भीर स्वभाव की थी। दोनों ही स्थानीय कन्या महाविद्यालय की बी० ए० कक्षा में पढ़ती थीं। दोनों के पिता प्रतिष्ठित नगर-पिता माने जाते थे, और उक्त कालिज की कार्य कारिणी के सदस्य थे। आनन्दी विवाहित थी और कमला कुमारी।

एक दिन कमला और आनन्दी, साथ-साथ रिक्शा में जल्दी ही कालिज से पढ़कर आ रही थीं। कालिज की प्रिंसिपल की चर्चा चल पड़ी। उस दिन कालिज में लड़कियों ने हड़ताल कर रखी थी। उनकी माँग थी, कि मिस वर्मा को हटा दिया जाय। कमला और आनन्दी भी हड़ताल में सम्मिलित थीं।

जब दोनों सखियाँ रिक्शा में घर आ रहीं थीं तो कमला ने आनन्दी से कहा—'समझ में नहीं आता कि मिस वर्मा को आचार्या क्यों बना रखा है ? न उनमें अध्यापन की योग्यता है, और न अनुशासन ही ठीक रख सकती हैं ।'

'तुम्हारी ये दोनों बातें ठीक हैं । परन्तु मिस वर्मा के तुम केवल दोष ही बतला रही हो उनके गुणों पर क्यों नहीं ध्यान देतीं ?'

'उनमें जो गुण हैं, वे सब अवगुणों के आगे फीके पड़ गये हैं— अर्थात् एक प्रकार से, दब गए हैं ।'

कमला ! ऐसी बात नहीं है । मैं तो यही कहूँगी कि मिस वर्मा-सी दयावती, शांत, सहिष्णु और गम्भीर आचार्या भी मिलनी कठिन है । जो काम करो, सोच समझकर कदम उठाओ । ऐसा न हो, कि वर्त्तमान से भविष्य का स्वप्न अधिक निराशा-जनक हो ।'

'कुछ भी हो । अब हम इस आचार्या को नहीं रहने देंगी । इसने हमारा भारी अपमान किया है । इस काँटे को निकालने में चाहे जितने कष्ट उठाने पड़ें हम सहर्ष तैयार हैं ।'

'यह देखो ! हमारा प्रतिज्ञा पत्र जिस पर पाँच सौ लड़कियों ने खून से हस्ताक्षर कर रखे हैं । उनके हटाने में सभी सहमत हैं ।

'तुम क्या कह रही हो? कमला ! फिर सोचलो !' 'अब अधिक सोचना नहीं है । काम कर दिखाने वाले, अधिक नहीं सोचा करते । अधिक सोचने वाले सक्रिय नहीं होते । बहन ! काम तो करने से ही होता है । यह हमारी मांग उचित है, और हमें विश्वास है, कि अवश्य ही पूरी होगी । विश्वास ही शक्ति है । आनन्दी ! क्या तुम नहीं जानतीं ? विश्वास रखो । सफलता हमारे पैर चूमेगी । हमारा उद्देश्य पूरा होगा ।'

'कमला जी ! यह तो आने वाला समय ही बतलायेगा। लेकिन मेरे तुच्छ विचार में, मिस वर्मा में, अवगुणों की अपेक्षा गुण कहीं अधिक हैं। वह कभी भी किसी अध्यापिका तथा छात्रा का अहित नहीं चाहतीं। उनका कोमल हृदय, कभी भी उन्हें अन्याय एवं अत्याचार करने के लिए तैयार नहीं कर सकता। वह अपने अपमान को भूल जाती हैं, और फिर अपराधी के साथ वही उदारता दिखाने लगती हैं।'

'क्या तुम यह समझती हो, कि मिस वर्मा अब इस कालिज की आचार्या रह सकती हैं ?'

कदापि नहीं, उन्हें जाना होगा और अपनी करनी का फल भोगना होगा। तुम नहीं जानतीं, उन्होंने हमारे कालिज को प्रांत भर में बदनाम कर दिया है।

हमारे कालिज का परीक्षा-केन्द्र टूट चुका है। अध्यापिकाएँ परीक्षक होने से वंचित हो चुकी हैं। कुछ छात्राएँ सफलता से, असफलता का मुँह देख चुकी हैं। "मैं नहीं समझती—यह सब कुछ मिसवर्मा के ही कारण हुआ है। इसके लिए और भी दोषी हो सकते हैं—आनंदी ने कहा"।

'तुम यही तो नहीं जानतीं। यही मिस वर्मा, सब बातों के लिए उत्तरदायी हैं। इतना ही नहीं, इनके होते हुए, कालिज में अनेक झगड़े चलते रहते हैं। हर बात में कहासुनी रहती है। पढ़ाई-लिखाई का तो बिल्कुल सत्यानाश है। जहाँ देखो, वहीं कोलाहल। कहीं कोई लड़ती है, कोई झगड़ती है। ऐसे कालिज में पढ़ने से, समय और धन, दोनों नष्ट होते हैं। क्या कभी तुमने अध्यापिकाओं की मीटिंग नहीं देखी ? मैं तुम्हें बतलाती हूँ—'एक बार मैंने स्टाफ़ मीटिंग (अध्यापिकाओं की सभा) छिपकर देखी। वहाँ अध्यापिकाएँ अपने अपने स्वार्थ के लिए इस प्रकार

लड़ रही थीं, जैसे कंजरियाँ तू-तू मैं-मैं करती हुई, लड़ती, झगड़ती हैं। और मजा यह कि मिस वर्मा मौसी बिल्ली बनी हुई, वह सब तमाशा देखती रहीं। उनमें किसी को भी डाटने का साहस नहीं हुआ।'

'तुम्हीं बतलाओ, ऐसी स्थिति में क्या करना उचित है?'

'जैसा तुम्हारा विचार हो। संस्था की, तथा छात्राओं की भलाई के लिए, मैं भी तुम्हारे साथ हूँ। आनन्दी ने अपनी अनुमति प्रकट की। फिर तो कमला का उत्साह और भी बढ़ गया।'

'लेकिन कमला जी! यह काम बड़ा कठिन है। समय बलवान सही, परन्तु मिस वर्मा का हटना लड़कियों का खेल नहीं है, जैसा कि तुम समझती हो।'

'केवल तुम्हारे मेरे पिता जी, क्या कर लेंगे? जब तक रायसाहब उनके पक्ष में हैं, कोई उन्हें आँख भर कर भी नहीं देख सकता।'

बहन! यह न कहो। संसार परिवर्तनशील है। कागज की नाव कुछ ही समय चलती है। मिस वर्मा के जाने का समय आ गया है। पाप का घड़ा भर चुका है। पिता जी, माता जी से बतला रहे थे—अब मिस वर्मा हमारे कालिज की प्रिंसिपल न रह सकेंगी। उनकी बहुत बदनामी हो चुकी है। मैं उनकी बातें सुन रही थी।

'मेरे पिता जी भी कहते थे कि रायसाहब को छोड़कर, सभी सदस्य उनको हटा देने के पक्ष में हैं।'

'क्या तुम्हारे पिता जी भी ऐसा ही चाहते हैं?'

'मैं कह नहीं सकती। सम्भव है उनका भी ऐसा ही विचार हो। मैं अवश्य उनके विचार जानने का उपाय करूँगी। तभी

तुम्हें निश्चित रूप से बतला सकूँगी। आनन्दी यह कह कर चुप हो गई।'

"अच्छा तो फिर शाम को अपने पार्क में मीटिंग पक्की रही। देखना! ठीक चार बजे आ जाना और साथ में शशिकला तथा मिस पद्मा को भी बुलाती लाना। और भी सब जगह, सूचित कर देना" आनन्दी मुस्कुराती हुई बोली—'कमला जी की आज्ञा तो विष्णु भगवान की आज्ञा है। मुझ में इतनी सामर्थ्य कहाँ है, कि तुम्हारी अवज्ञा करूँ।'

'अच्छा! समझी!! लेकिन अभी तो मैं कुमारी ही हूँ विष्णु भगवान कहाँ?' हाँ! तुम्हारे महादेव जी, हमारी सहायता करें, तो काम बन सकता है।

कमला के इन शब्दों से आनन्दी, जो विवाहित थी कुछ लज्जित हो गई, और उसे देखकर कमला हँस पड़ी, क्योंकि आनन्दी के पति का नाम महादेवप्रसाद था।

आनन्दी! अब चौक आ गया है। बातें बन्द करो। देखना शाम की मीटिंग की याद रहे।

फिर तो रिकशा से उतर कर, दोनों सखियाँ अपने अपने घर चली गईं।

जब किसी रोग के अच्छा होने की आशा नहीं रहती और वह रोग असाध्य हो जाता है, तो प्रकृति या तो उस रोग को समाप्त करती है या रोगी को ठिकाने लगा देती है।

ऐसा ही मिस वर्मा और कालिज का मामला था। या तो मिस वर्मा ही कालिज को छोड़ देतीं; या कालिज ही अपना दम तोड़ देता। दो ही बातें थीं, और एक अवश्य होनी थी।

ठीक चार बजे, हड़ताल करने वाली लड़कियों की, राम पार्क में सभा आरम्भ हो गई। सर्व सम्मति से सभानेत्री का भार मिस 'कमला' को सौंपा गया। श्रीमती आनन्दी सहायतार्थ चुनी

गईं। सर्व प्रथम हड़ताल के उद्देश्यों और उसकी प्रतिज्ञाओं पर विचार विनिमय हुआ। सभी लड़कियाँ एक मत थीं। विरोध करने वाली एक भी नहीं थी।

सर्व प्रथम भाषण देने के लिए मिस पद्मा खड़ी हुई और उसने इस प्रकार भाषण देना आरम्भ किया—

'प्रिय बहनों!

परिवर्तन संसार का नियम है। क्रान्ति के पीछे शान्ति, उन्नति और समृद्धि का युग आता है। हमारा कालिज, आजकल जिस अवस्था में चल रहा है, वह उसे अवनति के गर्त में गिराकर रहेगी।

आप देखती रह जाएँगी और आपका यह शिक्षा सदन मिस वर्मा के कुप्रबन्ध और षड्यन्त्रों का हलाहल पान करते करते, मृत प्रायः हो जायगा। तुम सभी माँ दुर्गा-भवानी की शक्ति-स्वरूपा हो। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध उठो! जागो! और इस अयोग्य आचार्या को शीघ्र से शीघ्र बदल दो। इसी में हमारा कल्याण है। हमारी छात्राएँ, बहनें और सभी अध्यापिकाएँ इस अशान्ति और कुचक्र का अन्त चाहती हैं।'

'बोलो! वचन दो! प्रतिज्ञा करो!' फिर तो एक साथ सबकी एक स्वर से—बदल दो। हटा दो। नहीं रहने देंगी—आदि उत्साह भरे नारों की हलचल ध्वनि गूँज-गूँजकर प्रतिध्वनित होने लगी। फिर एक साथ ही - भारत माता की जय!!! के पश्चात सभानेत्री की आज्ञा हुई—शान्त! शान्त! शान्त! भाषण समाप्त करके, मिस पद्मा बैठ गईं।

तदुपरान्त दो छात्राएँ और बोलीं। फिर क्या था? सभी अपनी प्रतिज्ञा पर कटिबद्ध हो गईं। सब लड़कियों में अपूर्व उत्साह था विचित्र उत्तेजना थी और अदम्य साहस था।

यह उसी दिन ज्ञात हुआ कि जब लड़कियाँ भी किसी काम पर तुल जायँ, अपनी प्रतिज्ञा पर डट जायँ और किसी योजना को कार्यान्वित करने लगें, तो उनकी भीषण ज्वाला को रोक सके—किसी में ऐसी शक्ति नहीं है।

अन्त में कमलाजी खड़ी हुई और समस्त छात्राओं की करतल ध्वनि के साथ सभानेत्री का उत्तेजना पूर्ण भाषण आरम्भ हुआ। सभा में सन्नाटा छाया हुआ था। सभी लड़कियाँ कमला जी के भाषण की प्रतीक्षा कर रही थीं। कमला ने एक विचित्र मुद्रा में उठकर इस तरह भाषण देना आरम्भ किया:—

शक्ति स्वरूपा प्यारी क्रान्तिकारी बहनो !

विश्वास हमारी शक्ति है। उत्साह दृढ़ता और साहस हमारे सहायक हैं। हृदय की दुर्बलता छोड़कर दृढ़ता का साहारा लो। प्रतिज्ञा की लाज रखना ! नारी क्या नहीं कर सकती ? देखना ! यह उक्ति कलंकित न हो। भले ही सबको कालिज से जाना पड़े, पर पीछे कदम न उठे ! किसी का उत्साह भंग न हो।

चाहे कितने ही कष्ट उठाने पड़ें परन्तु अपने वचन पर अटल रहना। आर्य कन्याएँ तथा नारियाँ सदैव से शक्ति-पुंज होती आई हैं। तुम्हारी कायरता हमारे कलंक का कारण न बने। आत्म विश्वास का सम्बल लेकर क्रान्ति कर्मक्षेत्र में उतरो और अपनी आन तथा शान की लाज रखती हुई, आगे बढ़ी चलो।

जब तक मैं तुम्हारे साथ हूँ, किसी छोटी से छोटी बालिका को भी डरने की आवश्यकता नहीं है। मेरे शब्दों पर भरोसा करो—विजय तुम्हारे साथ होगी। लक्ष्य की प्राप्ति का समय निकट है। पीछे न हटना ! बाधाएँ कहीं तुम्हें भयभीत न करदें। स्वार्थ अंधा न बनादे। संभल कर कदम उठाती चलो। घबराना, काँपना, डगमगाना कायरता है, मृत्यु है और भीषण विनाश है।

प्यारी बहनो ! मैंने तुम्हारे भरोसे पर ही, केवल तुम्हारे बल पर ही यह भीषण कदम उठाया है। मेरी विजय तुम्हारी विजय होगी। कहीं मुझे धोखा न खाना पड़े।

जब तक मिस वर्मा नहीं हटादी जातीं, हम किसी प्रकार भी अपनी माँग वापिस नहीं लेंगी यदि आप इस परीक्षा के समय फेल हो गईं तो सारा नगर तुम्हारी हँसी उड़ायेगा। तुम्हारे सभी हित, सुविधाएँ एवं अधिकार बुरी तरह कुचल दिए जायेंगे। न जाने कितनी निरपराध बहनें कालिज से निकाल दी जाएँगी' पढ़ाई से हाथ धो बैठेंगी।

यदि तुम्हें कायरता दिखानी है, तो आज ही घर बैठ जाओ। मेरी यही कामना है कि तुम अन्त तक दृढ़ रहो। नगर का बच्चा बच्चा तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है।

बोलो ! स्वीकार करो। सब एक साथ प्रतिज्ञाएँ स्मरण करके, उनकी पूर्ति की भगवती भवानी से प्रार्थना करो।

राय साहब को झुका दो ! उन्हें दिखादो कि हम, अबलाओं की, सबला कुमारियाँ हैं। राय साहब से कहदो कि वह अकेले चने बनकर व्यर्थ अपनी हँसी न करावें। भले ही, कालिज उनका है, परन्तु हमें भी सरकार और अपनी प्यारी नगर जनता का समर्थन प्राप्त है। लक्ष्य सिद्धि होगी, अवश्यमेव होगी। मुझे पूर्ण विश्वास है। कोई सन्देह नहीं है। केवल तुम्हारे मनोबल की आवश्यकता है। कहो ! बोलो। विश्वास दिलाओ। मुझे वचन दो ! भगवान् हमारी सहायता करें। जब तक हमारी प्रथम माँग, जो मिस वर्मा को हटाने की है---स्वीकार न हो, तब तक हड़ताल बराबर जारी रक्खी जाय।

करतलध्वनि के पश्चात् सब एक साथ बोल उठीं—"विजय

हो, सब स्वीकार है, हमारी जीत होगी। सब तत्पर हैं, कटिबद्ध हैं, कर्त्तव्य पथ पर अटल हैं और सब प्रकार के त्याग और कष्ट-सहन के लिए हृदय से तैयार हैं। कभी भी विचलित न होंगी। हम पर भरोसा रक्खो"।

तत्पश्चात् सभा का कार्य समाप्त कर दिया गया। फिर सब लड़कियों ने पूर्ण अनुशासन में रहते हुए नगर भर में एक भारी जुलूस निकाला। रायसाहब की कोठी पर भी लड़कियाँ पहुँचीं और अनेक बार जोर-जोर से अपनी माँग दुहराई। रायसाहब ने सब प्रकार से आश्वासन दिया। उस समय, जो भी लड़कियों की माँग सुनता, आश्चर्य प्रकट करता। जहाँ देखो, वहीं कन्याओं के उत्साह की प्रशंसा सुनाई पड़ती थी। कोई प्रबन्धकारिणी को बुरा कहता। कोई मिस वर्मा को धिक्कारता। कोई उन्हें अयोग्य और निर्लज्ज कहता और कोई बालिकाओं की माँग का समर्थन करता। नगर भर में यही चर्चा थी।

एक सप्ताह तक स्थानीय समाचारपत्रों ने भी बड़े बड़े शब्दों में लड़कियों की हड़ताल के शीर्षक देकर समाचार निकाले। सभी ने बालिकाओं की माँगों को उचित समझ कर अपने पत्रों में स्थान दिया और उनके पक्ष का समर्थन किया।

सारांश यह कि सब नगरवासियों, कालिज अधिकारियों और शिक्षा-विभाग तक को यह विदित हो गया कि बालिकाएँ ठीक कहती हैं और मिस वर्मा अयोग्य हैं। उन्हें हटा ही देना चाहिए, तभी कालिज की उन्नति सम्भव हो सकती है।

२

बालिकाओं की वाणी जनार्दन की वाणी सिद्ध हुई राय-साहब का सिंहासन भी डोल गया। उन्हें भी चिन्ता हो गई।

उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह मिस वर्मा को आचार्या रखकर और उनका पक्ष समर्थन करके, संस्था के साथ कोई बड़ा भारी अन्याय कर रहे हैं और उसके हितों पर कुठाराघात कर रहे हैं। प्रबन्धकारिणी की दृष्टि में तानाशाह बनते जा रहे हैं और साथ साथ जनता की दृष्टि में भी गिरते जा रहे हैं।

छात्राओं के विरोध की इस भीषण बाढ़ को रायसाहब अपनी शक्ति से नहीं रोक सके। अगले दिन ही प्रबन्धकारिणी की बैठक करनी पड़ी।

मिस वर्मा भी बुलाई गईं। रायसाहब ने कहा—'बहन जी आपके कारण, हमारे कालिज की बहुत बदनामी हो चुकी है। अब आपका हित त्यागपत्र देकर चले जाने में ही है। वास्तव में आप ने तो ऐसी बढ़िया संस्था की नींव ही हिलादी है।

यदि आप त्यागपत्र न देंगी तो आपको नोटिस देकर हटाना होगा। ऐसी हालत में आपको भी परेशानी होगी और हमें भी। फिर आपके लिए हमारी वह सहानुभूति न रहेगी जो सहर्ष त्याग पत्र देकर चले जाने में होती है।

अग्रिम तीन मास का वेतन, आपकी दस वर्ष की सेवा को पुरस्कार स्वरूप आप को अवश्य दिया जायगा। कहिए! क्या स्वीकार है?

सभी सदस्य रायसाहब के इस निर्णय से सहमत थे।

मिस वर्मा चक्कर में थीं। सोचने लगीं—बैठे-बिठाये क्या बवंडर खड़ा हो गया? जैसी ईश्वर की इच्छा। मजबूरी का क्या इलाज? विवश होकर स्वयं ही त्यागपत्र देना उचित समझा। त्यागपत्र, सर्वसम्मति से तुरन्त ही स्वीकार कर लिया गया।

तत्पश्चात मिस वर्मा कालिज कार्य भार से मुक्त करदी गईं

और अपेक्षित आचार्या की नियुक्ति भी कर दी गई। नई आचार्या को सूचित कर दिया गया कि अमुक दिनांक से, वह कालिज का भार संभाल लें।

मिस वर्मा निराश और हताश, घर लौट आईं। जिस संस्था को उन्होंने मिडिल स्कूल से, डिग्री कालिज बनाया था, आज वहाँ से इस तरह से अपमानित होकर जाना दुर्भाग्य की बात थी।

सच है स्वार्थ मानव को अंधा कर देता है। पदाभिमान कर्तव्य से च्युत कर देता है। धीरे धीरे, जब सारी कमजोरियाँ, कमियाँ, दोष और अन्याय एकत्र हो जाते हैं तब वे एक साथ ही ले डूबते हैं क्योंकि जब नाव में अधिक छेद हो जाते हैं तब वह डूब ही जाती है। 'छिद्रेषु अनर्थाः बहुली भवन्ति' ठीक ही है।

आजकल दल बन्दी का युग है। मानव दलबन्दी में पड़कर अपने कर्तव्य की उपेक्षा कर देता है। अपने दलवालों की गलत बातें भी उसे सही ही मालूम पड़ती हैं और निष्पक्ष व्यक्तियों के उचित और न्याय संगत सुझाव भी व्यर्थ समझ लिए जाते हैं। आजकल प्रत्येक संस्था का यही हाल है। आजकल स्कूल और कालिज भी दलबन्दी का अखाड़ा बने हुए हैं। इसमें झूँठ क्या है?

कन्या महाविद्यालय का विजय दशमी अवकाश चल रहा था। मिस वर्मा के हटने से, जितना हर्ष कमला और आनन्दी को था, उतना सम्भवतः किसी भी छात्रा को न होगा।

इन दिनों, प्रायः आनन्दी कमला के पास आती और मिस

वर्मा की ही चर्चा रहती। एक दिन दोनों घर पर परस्पर बातें कर रही थीं।

'आनन्दी! तुमने वचन दिया था कि मैं मिस वर्मा के सम्बन्ध में पिता जी के विचारों का पता दूँगी।'

आनन्दी ने उत्तर दिया—'अब उन विचारों का क्या महत्व है? अब सांपिन निकल गई, लकीर पीटा करो।'

'लेकिन मुझे तो, वे बातें जानने की जिज्ञासा है।'

'यदि ऐसी ही बात है, तो बतलाये देती हूँ—'

'मिस वर्मा के असली दोष पिता जी से ही मालूम हुए। उन्होंने बतलाया, कि मिस वर्मा, कानों की बहुत कच्ची थीं। स्वार्थी छात्राओं एवं अध्यापिकाओं ने जैसा भी जिसके विरुद्ध झूँठा-सच्चा, उनके कानों में भर दिया, बस उसी पर विश्वास करके, उसके विरुद्ध कार्य करने लगीं। इस प्रकार उन्होंने सदैव न्याय का गला घोंटा, और अन्याय को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त, जिसने जितना अधिक काम करके दिखाया, उस पर उतना ही और अधिक काम लादा गया।'

'ऐसा क्यों?'

'वह कहा करती थीं—कि गधी तो बोझा लादने के लिए ही होती हैं।'

'ऐसी तुच्छ मनोवृत्ति!'

'तुम्हीं समझलो।'

'आनन्दी! यह तो मैं भी कह सकती हूँ कि मिस वर्मा सीधी-सच्ची और काम करने वाली अध्यापिकाओं तथा छात्राओं को सदैव दबाती थीं और उन पर अपना रौब जमाये रहती थीं।

और जो धूर्त्त, चालाक तथा उनका गला दबाने वाली थीं, उनसे डरती रहती थीं।

उन्हें अधिक से अधिक सुविधाएँ देती थीं। और हर प्रकार से उन्हें लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करती रहती थीं।

'लेकिन एक बात मजे की रही।'

'वह क्या ?'

'वे ही उनकी सहायक और मित्र अध्यापिकाएँ और छात्राएँ उनके विरुद्ध हड़ताल कराने में सम्मिलित रहीं, और उनके हटाने का परोक्ष रूप से प्रयत्न करती रहीं। जो साध्वी थीं, वे कर ही क्या सकती थीं।'

'मेरी समझ में तो उनमें, सबसे भारी दोष—आलस्य, लापरवाही, कर्तव्य से उपेक्षा, आरामतलबी और दलबन्दी के चक्कर में अनुचित पक्ष समर्थन करना आदि थे। कभी उन्होंने दोषी को दण्ड नहीं दिया और अच्छी कार्यकर्त्ता की प्रशंसा नहीं की। न कभी किसी कक्षा में जाकर पढ़ाई को देखा और न कभी अनुशासन ही ठीक रखने की चेष्टा की। इसके अतिरिक्त मिस वर्मा कभी पूरे समय तक कालिज में भी नहीं रहीं। जब मन में आता, कालिज से घर चली आतीं।'

'न जाने उन्होंने रायसाहब पर क्या जादू कर रक्खा था ? वह उनकी प्रत्येक बात स्वीकार कर लेते थे। कालिज के सभी कामों में उन्हें पूरी स्वतन्त्रता थी।'

'आनन्दी ! मैंने तो बहुत बार देखा कि मिस वर्मा कभी भी विद्यालय खुलने पर, ठीक समय पर नहीं आईं और न विद्यालय बन्द होने तक रहीं।'

उनके आचार्याकाल में, दुष्टाओं की मौज और साध्वी कार्य-कर्त्ताओं की मौत थी। तुम्हीं बताओ! ऐसी अंधेर गर्दी और अराजकता कब तक चलती?

मिस वर्मा की प्रकृति अत्यन्त नीच थी। वह सदैव चोर से चोरी करने और शाह से जागने को कहतीं। उन्होंने सभी अध्यापिकाओं और छात्राओं में पारस्परिक फूट, मनोमालिन्य, बैर भाव, ईर्ष्या-द्वेष और विग्रह का ऐसा बीज बोया कि वे कभी अपने हितार्थ भी, संगठित नहीं हो सकती थीं।

यदि राधा के विरुद्ध श्यामा ने उनसे आकर कुछ कह दिया, तो फिर राधा को बुलाकर भड़काया—देखो! तुम श्यामा को अपना समझती हो वह कल ही मुझसे तुम्हारी शिकायत करने आई थी।

फिर उन दोनों में विग्रह हो जाता था और उससे स्वयं लाभ उठाती थीं।

जानती हो कमला! इसका क्या परिणाम होता था। वे दोनों मूर्ख अबलाएँ परस्पर लड़ जातीं और मिस वर्मा दोनों की भली बन जातीं।

हाँ बहन स्वार्थी अपनी भलाई चाहती हैं और दूसरों की जड़ काटती हैं। ऐसा ही मिस वर्मा करती थीं। लेकिन वह यह नहीं समझती थीं, कि कभी मेरी भी जड़ कट जायगी।

'अच्छा! कमला जी! वह देखो नौ बज रहे हैं, मैं अब घर चली। जरा इन्द्र को साथ भेज दो।

'तो फिर अब कब भेंट होगी?.

'कल कालिज में ही।' आनन्दी ने उत्तर दिया।

मैं साढ़े नौ तक तुम्हारी यहीं प्रतीक्षा करूँगी फिर साथ साथ ही कार में कालेज चलेंगे।

'अच्छी बात है' कहकर आनन्दी तो अपने घर चली गई और कमला अपने पलंग पर जा सोई। निद्रा की गोद में दोनों सखियों ने रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल हुआ। दोनों में नवीन स्फूर्ति, उत्साह और उमंग थी।

आज ही विद्यालय खुलने वाला था। और विशेष बात यह थी कि आज ही नई आचार्या कार्यभार ग्रहण करने वाली थीं।

समय व्यतीत होते क्या देर लगती है! खट से आठ, नौ और साढ़े नौ का समय हो गया आनन्दी आ चुकी थी। दोनों मस्त लहरें झूमती हुई, कार में बैठी कालिज जा रही थीं। मार्ग में ही नई आचार्या के स्वागत की योजना बनाती जा रही थीं। शिष्टाचार के नाते मिस वर्मा को विदाई-भोज भी देना निश्चित कर लिया गया।

बातों ही बातों में कालिज का द्वार आ गया। कार से उतर कर वे दोनों तो कक्षा में जा बैठीं और कार फुर्र से उड़ती हुई घर आ गई। तीसरी घंटी के बाद नोटिस आया कि नई आचार्या चार्ज लेकर सब लड़कियों और अध्यापिकाओं से परिचय प्राप्त करेंगी और इसके बाद छुट्टी हो जायगी।

तीसरी घंटी बजते ही, सब लड़कियाँ, शान्ति पूर्वक, कक्षा-नुसार पंक्तिबद्ध कालिज-प्रांगण में पहुँच जायँ। प्रत्येक कक्षा के साथ उसकी कक्षाध्यापिका भी रहेंगी। थोड़ी देर बाद ही, टन टन करके तीन घंटियाँ बजीं। चार्ज लेना देना समाप्त होते ही मिसेज-भाटिया कालिज हाल में पहुँच गईं। मिस वर्मा भी साथ थीं।

सब लड़कियों तथा युवती अध्यापिकाओं ने देखा कि मिसेज-

भाटिया किसी की भी दादी, नानी की आयु से कम न थीं। मुँह में दांतों के चिह्न मात्र बने दिखाई पड़ते थे। मुख पर सिकुड़न और झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। लेकिन बड़ी चुस्त और कार्यकुशल दिखाई पड़ती थीं।

सब छात्राओं ने बड़े ही ध्यान से अपनी नई आचार्या को देखा, जो हड़ताल के पारिश्रमिक रूप में प्राप्त हुई थीं।

तदुपरान्त स्वागत तथा विदाई का कार्य आरम्भ हुआ। मिस वर्मा को विदाई-पत्र दिया गया और श्रीमती भाटिया को स्वागत-पत्र समर्पित किया गया।

नवीन युग और सुव्यवस्थित शासन पद्धति की आशा से, सब बालिकाओं एवं अध्यापिकाओं के मुख पर प्रसन्नता एवं नवीन उल्लास दिखाई पड़ रहा था। मिस वर्मा उदास बैठी थीं।

सर्व प्रथम मिस वर्मा बोलने खड़ी हुईं और छात्राओं एवं अध्यापिकाओं को सम्बोधन करती हुईं, अपनी रामकहानी सुनाने लगीं :—

"प्रिय छात्राओ एवं उपस्थित देवियो!

दस वर्ष काम करने के पश्चात्, आज मैंने आपके विद्यालय का कार्यभार श्रीमती भाटिया को दे दिया है। आज मैं आप सबसे विदाई लेने के लिए ही उपस्थित हुई हूँ। मैंने इस विद्यालय को एक साधारण मिडिल स्कूल से डिग्री कालिज बनाया है।

मुझे इस स्थान को छोड़ते हुए जितना दुःख हो रहा है, मैं उसे शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर सकती। मुझे हर्ष है, कि मैं जिस देवी के हाथों में आपके विद्यालय को दे रही हूँ, वह मुझसे अधिक योग्य, चतुर और शिक्षा-संस्था-संचालन में कुशल एवं पूर्णरूपेण अनुभव प्राप्त हैं।

जो कमियाँ मुझ से पूरी नहीं हो सकी हैं, मुझे पूर्ण विश्वास है, मिसेज भाटिया अवश्य पूरा कर देंगी। अब अधिक कहने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। जो त्रुटियाँ मुझ से हुई हों, मैं उन के लिए आप सबसे क्षमायाचना करती हूँ। अब मेरी भगवान् से यही प्रार्थना है कि सब छात्राएँ एवं अध्यापिकाएँ सकुशल रहें और अपना कर्त्तव्य पालन करती हुई अपने जीवन में सफल हों। मेरे योग्य, जो भी सेवा हो, हर समय प्रस्तुत हूँ। यह वाटिका सदैव फूलती-फलती रहे, यही मेरी शुभ कामना है।

जय हिन्द !"

तदुपरान्त श्रीमती भाटिया ने खड़ी होकर सर्वप्रथम अपने स्वागत के लिए धन्यवाद दिया और कहा—"जिस अवस्था में मिस वर्मा यहाँ से जा रही हैं, मुझे इसका बड़ा भारी खेद है। ऐसी स्थिति में मुझे आप सबके सहयोग की नितान्त आवश्यकता है।

सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने पर मेरी इच्छा नौकरी करने की नहीं थी, परन्तु शिक्षा-विभाग एवं रायसाहब के आग्रह को स्वीकार करना भी, मैंने अपना धर्म समझा।

जिस प्रकार, आप घर पर, अपनी माँ दादी और नानी की सहायता करती हैं, मैं भी आपसे ऐसा ही सहयोग चाहती हूँ। आशा है आप सब परस्पर उदारता पूर्वक रहती हुई, तत्परता के साथ अपना कर्त्तव्य पालन करती रहेंगी।

साथ ही यह भी बतलाना आवश्यक है कि मैं किसी की बुराई-भलाई सुनना पसन्द नहीं करती। इसलिए कोई मुझसे किसी की निन्दा-स्तुति करने का कष्ट न करें। मैं बहुत थोड़े समय के लिए आपके यहाँ रहूँगी। मेरी अभिलाषा है कि मिस वर्मा,

फिर आप के कालिज की आचार्या होकर आपके मध्य कार्य करें।

अन्त में, मैं आपका ध्यान कालिज के अनुशासन एवं शिक्षा की ओर आकर्षित करने की प्रार्थना करती हूँ। मैं जहाँ कहीं पर भी रही हूँ, मैंने सदैव विद्यालय और छात्राओं तथा अध्यापिकाओं के हित का ध्यान रक्खा है। आप सब मानवहित की भावना से कार्य करती रहें, यही अभिलाषा है।

जय भारती !"

तदुपरान्त सभा का कार्य समाप्त प्रायः हो गया और जलपान का कार्य आरम्भ हुआ। लगभग आध घंटे में ही यह कार्य भी समाप्त हो गया।

इसके पश्चात् विद्यालय की छुट्टी हो गई और सब छात्राएँ एवं अध्यापिकाएँ अपने अपने घर चली गईं। कमला आनन्दी अपनी कार में बैठकर घर आगईं। रास्ते भर कभी मिस वर्मा और कभी श्रीमती भाटिया सम्बन्धी बातों की चर्चा चलती रही। उस दिन तो कमला तथा आनन्दी दोनों ने ही श्रीमती भाटिया की बहुत प्रशंसा की और अपनी सफलता पर पूर्ण सन्तोष प्रकट किया। परिवर्तन का प्रथम रूप अवश्य ही प्रिय होता है।

अब श्रीमती भाटिया की अध्यक्षता में नया शासन आरम्भ हो गया। किसी को बुरा लगा, किसी को अच्छा। लेकिन अनुशासन कड़ा हो गया।

कक्षाओं में तथा कालिज सीमा में जो हर समय कोलाहल होता रहता था वह अब नहीं रहा। सब कक्षाएँ शान्त बैठी दिखाई पड़ती थीं।

छात्राएँ अनुशासन में रहकर अपनी पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान देने लगीं। अध्यापिकाओं ने भी समझ लिया कि अब हाथ-पाँव बचाकर काम करना चाहिए।

धीरे धीरे अन्धेर नगरी की लूट-खसोट समाप्त होने लगी। चोर, आलसी, चुगलखोर सब के मान मर गए।

अब तो लड़कियाँ भी दादी की डाट से बचने की फिक्र करतीं। क्योंकि वे समझती थीं कि अब दादी की शिकायत किसी भी न्यायालय में नहीं हो सकेगी। रायसाहब और कमेटी के सदस्य भी आचार्या जी का पक्ष लेंगे।

कुछ दिनों में सारे विद्यालय की कार्य पद्धति ही बदल गई। जब सुगन्धित समीर चलती है, तब सारी गन्दगी सुगन्धि में परिणत हो जाती है। घंटा बजते ही अध्यापिकाएँ भी अपनी पढ़ाने की कक्षा में चली जाती थीं छात्राएँ भी अब इधर-उधर नहीं घूमती फिरती थीं। क्या कार्यालय, क्या पुस्तकालय, सभी की दशा सुधरने लगी।

मिसेज भाटिया अनुभवी थीं। वह तीस वर्ष डिग्री कालिज की प्रिंसिपल रह चुकी थीं। बोलने में. लिखने में, बातचीत और व्यवहार में कुशल थीं। उनकी शिष्टता ने सबको मुग्ध कर लिया। उनका गम्भीर चेहरा सभी के लिये भयावह था। अब तो कमला और आनन्दी भी चुपचाप कालिज आतीं और पढ़कर चली जातीं। पहले जैसी मौज अब नहीं रही थी। किसी भी लड़की की इस नानी के सामने बोलने तक की हिम्मत न पड़ती थी।

एक दिन कमला देर से आई। श्रीमती भाटिया कक्षा में पढ़ा रही थीं। कमला ने अन्दर जाना चाहा। तुरन्त ही पोपले मुँह से हुँकार निकली—"नो, चायल्ड, यू आर लेट, रिमेन आउट-साइड"—अर्थात् बच्ची तुम देर करके आई हो, कक्षा से बाहर ही रहो।

कमला का एक पैर कक्षा में, और एक बाहर था। वह काँप रही थी। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। तुरन्त पीछे हटकर, बाहर निकल आई और वाचनालय में जा बैठी।

यह देखकर सब लड़कियाँ दंग थीं। घंटा बजने पर आनन्दी उसको ढूँढती हुई वाचनालय में आकर बोली—'आज कैसे देर हो गई ?

'क्या बताऊँ। ड्राइवर कहीं चला गया था। देर से घर से चलना हुआ।

'बहन जी ! अब वह चोरबाजारी नहीं रही है। ठीक समय आना चाहिए। अब मिस वर्मा का समय नहीं है, अब श्रीमती भाटिया का शासन है।'

कमला चुप थी। क्या कर सकती थी ? अब तो पुरानी वस्तु उखाड़ कर स्वयं ही नई लगाई थी। यदि अब कुछ करती तो न जाने क्या हो जाता।

जब यह घटना और लड़कियों को भी मालूम हुई तो वे भी उस दिन से सचेत हो गईं और ठीक समय पर कालिज आने लगीं।

अध्यापिकाओं के कार्य की देख-भाल भी व्यवस्थित रूप से होने लगी। उन्होंने भी अब लेट आना छोड़ दिया। मिस वर्मा के समय की सिंहनियाँ भी अब तो बिल्कुल सीधी गऊएँ बन गईं। लेखी, नौकर, चपरासी आदि भी सब सीधे हो गए।

'शठ सुधरहिं सत्संगति पाई' वाली कहावत चरितार्थ होने लगी।

'सुखी होंहि सब पाई सुराजा' के अनुसार अन्धेर नगरी के

अन्धे राजा के समय का, 'टका सेर शाक और टका सेर खाना' बिकना बन्द हो गया। इस समय न्याय राज्य था।

अब तो विद्यालय में जाग्रति, उन्नति तथा समृद्धि आ गई। विद्यालय की सम्पूर्ण दल बन्दी, अराजकता मौजबहार और मनमानी समाप्त हो गई।

पहले समय की कार्य शिथिलता, कार्य तत्परता में बदल गई। वास्तव में पतझड़ गई और सुन्दर-सुहावनी वसन्त ऋतु आ गई।

श्रीमती भाटिया ने उत्साह, लगन, सचाई व ईमानदारी से कार्य आरम्भ करके सबके सामने उच्च आदर्श रक्खा। उन्होंने छात्राओं के चरित्र, शिक्षा, अनुशासन, स्वास्थ्य-आदि की ओर विशेष ध्यान दिया।

परिणाम यह हुआ कि विद्यालय का अनुशासन अति उत्तम हो गया। पढ़ाई बढ़िया होने लगी। निकम्मी छात्राएँ तथा अध्यापिकाएँ विद्यालय छोड़ भागीं। आनन्दी और कमला ने भी विद्यालय को नमस्कार किया।

जिस आदर्श को लेकर श्रीमती भाटिया कालिज में आई थीं, उसमें ईश्वर की कृपा से उन्हें पूर्ण सफलता मिली। कारण यही था, कि वह निष्पक्ष, गम्भीर, योग्य, कर्मठ, अनुभवी, निर्लोभ एवं सदाचारी थीं।